सर्वश्रेष्ठ
रूसी और सोवियत
पुस्तकमाला

फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की

रजत रातें

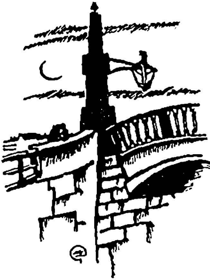
सर्वश्रेष्ठ रूसी और सोवियत पुस्तकमाला

फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की

रजत रातें

भावुकतापूर्ण उपन्यास

एक स्वप्नदर्शी के संस्मरणों से



प्रगति प्रकाशन
मास्को

अनुवादक – मदन लाल 'मधु'
चित्रकार – मिख़ाईल दोबुज़ीन्स्की

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक की विषय-वस्तु, अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये:

प्रगति प्रकाशन,
जूबोव्स्की बुलवार, २१,
मास्को, सोवियत संघ।

Ф. М. ДОСТОЕВСКИЙ
БЕЛЫЕ НОЧИ
На языке хинди

क्रम

दोस्तोयेव्स्की

और "रजत रातें"

महान लेखक और चिन्तक दोस्तोयेव्स्की मुख्यत: अपने बड़े सामाजिक-दार्शनिक उपन्यासों के लिये ही विश्व-विख्यात हैं। किन्तु "अपराध और दण्ड" तथा "कारामाज़ोव बन्धु" के रचयिता के कृतित्व मे लघु उपन्यासों और कहानियों को भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

दोस्तोयेव्स्की की पहली रचना "दरिद्र नारायण" १८४६ में प्रकाशित हुई। तब से ७ वे दशक के मध्य तक लघु उपन्यास ही उनका प्रिय और लगभग एकमात्र साहित्यिक विधा बना रहा। एक के बाद एक लघु उपन्यास पढते हुए हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि जीवन-सम्बन्धी विशद सामग्री को धीरे-धीरे पचाते हुए सृजनात्मक प्रौढ़ता प्राप्त करने तक उन्होंने कितना जटिल मार्ग तय किया।

दोस्तोयेव्स्की के पहले लघु उपन्यास "दरिद्र नारायण" का प्रकाशन पाचवें दशक में साहित्य-जगत की एक बहुत महत्त्वपूर्ण घटना माना गया। इस छोटी-सी रचना मे ही गोगोल की साहित्यिक प्रवृत्ति के मूलभूत विचार इतने स्पष्ट और पूर्ण रूप मे झलके कि बेलीन्स्की आत्म-विभोर हो उठे और उन्होंने दोस्तोयेव्स्की के महान लेखक होने की भविष्यवाणी की।

फ्योदोर मिख़ाईलोविच दोस्तोयेव्स्की का जन्म ११ नवम्बर १८२१ को मास्को मे हुआ। उनके पिता मास्को के मारीइन्स्की अस्पताल के एक मामूली-से और निर्धन चिकित्सक थे। दोस्तोयेव्स्की का बचपन से ही अभावों और दु:ख-मुसीबतों से पाला पड़ा, वे स्वभाव से अत्यधिक अनुभूतिशील व्यक्ति थे और छोटी ही उम्र में उन्हे नगर के दीन-हीनों की दुर्दशा का ज्ञान हो गया था। पीटर्सबर्ग के सैन्य इंजीनियरी विद्यालय मे उनकी शिक्षा के वर्ष जीवन के वास्तविक अनुभव की दृष्टि से बहुत

महत्वपूर्ण रहे। इस महानगर के सामाजिक वैषम्य ने तरुण दोस्तोयेव्स्की के हृदय पर अमिट छाप अंकित कर दी। इजीनियरी विद्यालय की पढाई ख़त्म करने के वाद दोस्तोयेव्स्की ने सेना मे कोई अच्छा ओहदा पाने की इच्छा प्रकट नही की। साहित्य ने उन्हें अपनी ओर खींच लिया, उसी में उन्हें स्पष्ट रूप से अपना भविष्य दिखाई दिया। पुश्किन और गोगोल, वाल्जाक और शिल्लर के अत्यधिक श्रद्धालु दोस्तोयेव्स्की साहित्य को जीवन-वोध और मानवीय आत्मा को प्रभावित करने का महान साधन मानते थे। वे सुखी और श्रेष्ठ मानव की कल्पना करते थे, किन्तु अपने चारो ओर निर्दयता और अधिकारहीनता, पीड़ितो के दुखभरे आंसू और अत्यधिक, लगभग कल्पनातीत गरीबी पाते थे। दोस्तोयेव्स्की के पहले वडे नगर के इन मामूली और वदकिस्मत लोगो की दुर्दशा का किसी ने भी ऐसा करुण चित्र प्रस्तुत नहीं किया था।

"'दरिद्र नारायण', – यह एक लघु उपन्यास का नाम ही नही, उससे कही वढ़ कर है," – दोस्तोयेव्स्की ने अनेक वर्षो तक के अपने साहित्य-सृजन के मुख्य विषय के वारे में उक्त मत प्रकट किया था। दीनो और भाग्यहीनों की स्थायी चिन्ता उन्हे सदा बेचैन किये रही और यही शाश्वत बेचैनी तथा सत्य की यही अन्तहीन और यातनापूर्ण खोज ही शायद उनकी प्रतिभा का सब से जोरदार पहलू है।

पाचवे दशक के अन्त में दोस्तोयेव्स्की ने नये विषय की ओर ध्यान दिया। उन्होने एक गरीब बुद्धिजीवी, एक स्वप्नदर्शी, उच्च मानसिक और बौद्धिक स्तर के एक नायक की रचना की। पीटर्सबर्ग का बुद्धिजीवी यदि धनी और कुलीन नही था, तो निर्धनता और निपट एकाकीपन ही उसका भाग्य होते थे। दोस्तोयेव्स्की के चरित्र-चित्रण के अनुसार ऐसा व्यक्ति दयालु, किन्तु दुर्बल है, वह कठोर वास्तविकता से नाता तोड़कर कल्पना और सपनो की दुनिया में जा बसता है। "रजत राते" (१८४८) का नायक यह स्वीकार करता हुआ कहता है – "मैं स्वप्नदर्शी हूं। मेरा वास्तविक जीवन बहुत कम है।" धीरे-धीरे वह तो वातचीत करना भी भूल जाता है और वात करता है तो इतने अधिक "सुन्दर" ढंग से मानो किताव लिख रहा हो। यदि कोई व्यक्ति हमेशा अकेला रहा हो, किसी से भी उसने कभी कोई वातचीत न की हो और यदि उसकी अपनी कोई "कहानी" भी न हो, तो इसमें हैरानी की वात ही कौन-सी है! इसके साथ ही स्वप्नदर्शी प्रतिभाशाली और चिन्तनशील व्यक्ति है – लगभग लेखक की शैली में ही उसके मुंह से कहानी कहलवायी जाती है। स्वप्नदर्शी की चेतना में कल्पना और वास्तविकता घुलमिल जाती है, उसके जीवन

में रजत रातो की शीतल रोशनी सूरज के प्रखर प्रकाश का स्थान लेती है। जितनी जल्दी से रजत रात बीतती है, उसी तेज़ी से स्वप्नदर्शी की अल्पकालीन ख़ुशी और जीवन के साथ उसके वास्तविक सम्पर्क का भी अन्त हो जाता है। एक के बाद एक चार रातें झलक दिखाकर गायब हो जाती हैं। लघु उपन्यास मे भी इन्ही के अनुसार चार परिच्छेद हैं – "पहली रात", "दूसरी रात"... और फिर "सुबह" हो गयी। स्वप्नदर्शी कहता है–" सुबह मेरी रातों का अंत बनी। दिन बुरा था। पानी बरस रहा था और मेरी खिड़की के शीशे पर उदासी भरी टपटप हो रही थी। मेरे छोटे-से कमरे में अंधेरा था, बाहर बादल छाये हुए थे।" प्रकृति-वर्णन बहुत ही बारीकी से नायक की मन.स्थिति को व्यक्त करता है। कहानी कहनेवाला ख़ुद भी कल्पना की उड़ानें भरनेवाला रोमानी व्यक्ति है और प्रकृति को अपनी ही नज़र से देखता है– "बहुत ही प्यारी रात थी, ऐसी रात, जो केवल तभी हो सकती है, जब हम जवान होते हैं, कृपालु पाठक।" स्वप्नदर्शी मन से कवि है – उसके लिये किसी अपरिचित के चेहरे से ही उसके चरित्र की कल्पना करना कुछ कठिन नही है, उसकी तो घरों से भी जान-पहचान है, वह उनके भाग्यों से परिचित है, उनकी "आवाज़ों" का अन्तर जानता है। वह ख़ुद भी तो कवि बनने का सपना देखता है, जो शुरू में अज्ञात रहता है मगर बाद मे ख्याति के शिखर पर पहुंच जाता है।

दोस्तोयेव्स्की की शक्ति इस बात मे निहित है कि "रजत राते" के नायक के प्रति पूरी सहानुभूति रखते हुए भी उन्होने उसकी दुर्बलताओं को उभारा है। वास्तविकता के सम्पर्क के क्षण ही स्वप्नदर्शी के सर्वाधिक प्रिय क्षण थे। यदि गोगोल के स्वप्नदर्शी चित्रकार पिस्कार्योव ("नेव्स्की प्रोस्पेक्त") के लिये जीवन के साथ पहला ही टकराव घातक सिद्ध हुआ, क्योंकि वास्तविकता ने उसकी कल्पना के पंख तोड़ डाले, तो "रजत राते" के नायक ने जीवन में ही वह कुछ पाया ,जो सर्वश्रेष्ठ है, जो कल्पना से बढ़-चढ़कर है। इसी वास्तविक जीवन के सामने कल्पना की सभी उडानो, सभी सपनों का सदा के लिये रंग फीका पड़ गया। "रजत राते" के उदासीभरे और विषादपूर्ण अन्त का आशय यह है कि सपने पालकर और अधिक जीना सम्भव नही और प्रियतमा के जाने से वास्तविक सुख का महल भी गिर चुका है।

...दोस्तोयेव्स्की की साहित्यिक गतिविधि का सिलसिला अचानक ही टूट गया। पेत्राशेववादियों के क्रान्तिकारी मण्डल पर चलाये गये मुकदमे के सम्बन्ध में उन्हें २३ अप्रैल १८४६ को गिरफ़्तार करके पीटर-पाल किले में बन्द कर दिया गया। दोस्तोयेव्स्की ने सेम्योनोव्स्की मैदान में मृत्यु-दण्ड के क्रूर नाटक, कठोर

श्रम-दण्ड और साइबेरिया में निर्वासन के भयानक वर्षों को साहसपूर्ण सहन किया।

निर्वासनकाल के लम्बे मौन के बाद १८५६ में, सामाजिक उत्थान के नये युग में, उन्होने फिर से अपनी कलम सम्भाली। किन्तु वे निर्वासन से पहले जिस प्रेरणा से अनुप्राणित थे, उसी को संजोये हुए सामाजिक और साहित्यिक जीवन की ओर नही लौटे। वे संघर्ष-पथ पर बढते हुए वास्तविकता को बदलने, उसे बेहतर बनाने की सम्भावना मे अपना विश्वास खो चुके थे। मानवजाति के दु:खों-कष्टों को अपनी आत्मा मे उतारकर उन्होंने उनकी अन्तहीनता के आगे घुटने टेक दिये।

लेखक के पीटर्सबर्ग लौटने पर उनके बड़े उपन्यास "अपमानित और अवमानित" (१८६१), "अपराध और दण्ड" (१८६६), "बुद्धू" (१८६८), "भूत" (१८७१-१८७२), "तरुण" (१८७५), "कारामाजोव बन्धु" (१८७९-१८८०) प्रकाश मे आये।

इन उपन्यासों ने दोस्तोयेव्स्की को रूसी और विश्वसाहित्य को एक महानतम उपन्यासकार बना दिया। उन्होने दार्शनिक विचारों से ओतप्रोत और मनोवैज्ञानिक गहराइयो को छूनेवाले विशेष ढंग के उपन्यास रचे, जो मानवीय आत्मा के "अनुसन्धान" का विलक्षण रूप धारण कर लेते हैं। अपने उपन्यासों में वे बड़े उत्साह और अथक रूप से सत्य की खोज करते रहे। "मानव के प्रति पीड़ा" की वह भावना उनमे निरंतर बनी रही जिसे प्रगतिशील आलोचको ने उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में ही स्पष्टत: भाप लिया था। उनका समूचा कृतित्व इसी पीड़ा, तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से मानवतावादी लेखक के अत्यधिक असन्तोष, सभी लोगो के भाग्य के लिये प्रत्येक के उत्तरदायित्व की उच्च भावना की चेतना, बेचैनीभरे और पथ खोजते हुए विचारों से भरपूर है।

दोस्तोयेव्स्की का देहान्त ९ फ़रवरी १८८१ को पीटर्सबर्ग में हुआ।

लेखक के रूप में दोस्तोयेव्स्की का मूल्यांकन करते हुए म० गोर्की ने लिखा है – "दोस्तोयेव्स्की की प्रतिभासम्पन्नता निर्विवाद है, अभिव्यजना-शक्ति की दृष्टि से शायद, केवल शेक्सपीयर से ही उनकी तुलना की जा सकती है।"

ल० रोज़ेनब्ल्यूम

"रजत रातें" के लिये मिखाईल दोबुजीन्स्की के चित्र

प्रसिद्ध रूसी चित्रकार मि० दोबुजीन्स्की के लिये दोस्तोयेव्स्की की रचनाओं की चित्र-सज्जा कोई संयोग की बात नही थी। उन्होंने तो लगभग अपना सारा जीवन ही इस काम को समर्पित कर दिया। फ़० दोस्तोयेव्स्की के लघु उपन्यास "रजत राते" के लिये उनके चित्र तो विशेषत बहुत उल्लेखनीय हैं।

दोबुजीन्स्की द्वारा चित्र-सज्जा के लिये चुना गया लघु उपन्यास दोस्तोयेव्स्की की एक प्रारम्भिक रचना है, उसकी विषय-वस्तु बहुत सरल है और उसमे केवल दो-तीन पात्र हैं। नायक – एकाकी स्वप्नदर्शी – का मानसिक जगत चित्रों के रूप में अभिव्यक्त नही किया जा सकता और बाहरी घटनाओ मे एकरूपता है। इसलिये चित्रकार ने वास्तुशिल्पिक दृश्यावली पर ही, जिसकी हम अपने-अपने ढंग से कल्पना कर सकते हैं, ध्यान केन्द्रित किया। दोबुजीन्स्की के चित्रो मे पिछली शताब्दी के पाचवे दशक के पीटर्सबर्ग को चित्रित किया गया है। परिच्छेदों के आरम्भ और अन्त मे तथा बड़े चित्रो मे हमें बड़े-बडे बहुमंजिले मकान, रात्रिकालीन शान्त सड़के और ऊंघती हुई नहरे दिखाई देती हैं। दोबुजीन्स्की के चित्रों का विशेष लक्षण है – करुणाजनक उदासी। दोबुजीन्स्की के चित्रों मे पीटर्सबर्ग स्वप्नदर्शी नायक के साथ मानो हताश-निराश-सा, पीड़ित और रोता हुआ प्रतीत होता है, उसके साथ उसके जीवन की दारुण घटनाओ में भाग लेता, ऐसे व्यक्ति के जीवन की घटनाओ मे, जो लोगो के साथ अपना मानसिक सम्पर्क खो चुका है, सामाजिक जीवन के प्रवाह से अलग जा पड़ा है।

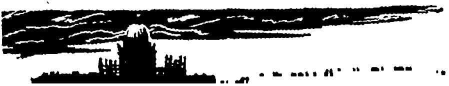
"रजत राते" में स्वप्नदर्शी का दु:खद अन्त नायक के प्रति स्पष्ट महानुभूति के साथ शोकपूर्ण रंगो मे चित्रित किया गया है, किन्तु इसके बावजूद उसका नाश बिल्कुल साफ दिखाई देता है। दोस्तोयेव्स्की का "भावुकतापूर्ण लघु उपन्यास" जिस विशिष्ट विषादपूर्ण उदासी मे डूबा हुआ है, दोबुजीन्स्की ने उसे ही अपने चित्रों मे व्यक्त किया है। उनमे सामाजिक एकाकीपन, वास्तविक जीवन से अलगाव की भीषण यातना, जिसकी स्वप्नदर्शी को अनुभूति होती है, प्रतिबिम्बित हुआ है। नगर को बिल्कुल वीरान, लगभग मृत दिखाया गया है। इसीलिये सुनसान मकानो की पृष्ठभूमि में इनके बीच खोकर रह गया एकाकी व्यक्ति मन पर इतनी गहरी दु:खद छाप छोड़ता है। चित्रकार को उसके चेहरे के भावों को व्यक्त करने की आवश्यकता

नही क्योंकि वैषम्य इतना अधिक है कि वह दुःखद अन्त, आशाहीन उदासी और एकाकी अस्तित्व का आवश्यक प्रभाव पैदा कर देता है।

दोस्तोयेव्स्की की साहित्यिक कृति, लघु उपन्यास "रजत रातें" और उसके चित्रो का घनिष्ठ शैलीगत सम्बन्ध इस बात का प्रमाण है कि मि० दोब्रुजीन्स्की ने लेखक के विचारों की गहराई मे जाकर ही चित्र बनाये हैं।

य० नेचायेवा

..या फिर इसीलिये
उसका हुआ था जन्म,
कि चाहे कुछ क्षण ही सही
वह तेरे हृदय के
निकट रह सके?..
इ० तुर्गनेव



पहली रात

बहुत ही प्यारी रात थी, ऐसी रात, जो केवल तभी हो सकती है, जब हम जवान होते हैं, कृपालु पाठक। आकाश सितारों से ऐसे जगमगा रहा था, ऐसा उजला था आकाश कि उस पर नज़र डालते ही बरबस यह प्रश्न मन में आता था – क्या ऐसे आकाश के नीचे भी तरह-तरह के क्रोधी और सनकी लोग हो सकते हैं? यह भी जवानी के दिनों का ही प्रश्न है, कृपालु पाठक, बहुत ही जवान लोगों का, मगर भगवान करे कि यह सवाल आपके दिल में अक्सर आये! .. सनकी और तरह-तरह के क्रोधी लोगों की चर्चा करते हुए मैं यह स्मरण किये बिना नहीं रह सकता कि आज का दिन ख़ुद मैंने कितने अच्छे ढंग से बिताया था। सुबह से ही एक अजीब तरह की टीस मेरे दिल को कचोटने लगी थी। अचानक मुझे ऐसा प्रतीत हुआ था कि मुझ एकाकी को सभी छोड़े जाते हैं, कि सभी मुझ से दूर भागे जा रहे हैं। निस्सन्देह किसी का भी यह पूछना उचित होगा कि ये सभी कौन हैं? कारण कि मुझे पीटर्सबर्ग में रहते हुए आठ साल हो गये हैं और इस बीच लगभग किसी भी व्यक्ति से जान-पहचान नहीं कर पाया हूं। मगर मुझे जान-पहचान करने की ज़रूरत ही क्या है? इसके बिना ही मैं सारे पीटर्सबर्ग से परिचित हूं। इसीलिये तो जब सारा पीटर्सबर्ग उठकर अचानक देहाती बंगलों को चल दिया, तो ऐसा लगा कि सभी मुझे छोड़े जा रहे हैं। अकेला रह जाने के ख़्याल से मेरा दिल डूबने लगा। मैं पूरे तीन दिन तक नगर की ख़ाक छानता रहा और यह नहीं समझ पाया कि मुझे क्या हो रहा है। मैं नेव्स्की सड़क पर जाता या बाग़ में या नदी-तट पर भटकता – कहीं भी तो कोई ऐसा चेहरा नज़र न आता जिसे मैं साल भर से एक ही जगह और एक ही वक़्त पर देखने का

आदी हो चुका था। जाहिर है कि वे मुझे नहीं जानते, मगर मैं तो उन्हें जानता हूं। मैं उन्हें बहुत अच्छी तरह जानता हूं, मैंने तो उनके चेहरों को लगभग पढ़ लिया है। जब उन चेहरों पर ख़ुशी झलकती है तो मैं खिल उठता हूं और जब उन पर कुहासा छा जाता है, तो उदास हो जाता हूं। एक बुजुर्ग से तो लगभग मेरी दोस्ती ही हो गयी है जिससे फ़ोन्तान्का के क़रीब हर दिन एक ही निश्चित समय पर मेरी भेंट होती है। बहुत ही धीर-गम्भीर और सोच में डूबा हुआ चेहरा है उसका। बुजुर्ग हर वक़्त कुछ बड़बड़ाता और बायें हाथ को हिलाता-डुलाता रहता है और उसके दायें हाथ में सुनहरे हत्थेवाली गंठीली लम्बी छड़ी होती है। उसने मेरी तरफ़ ध्यान भी दिया है और वह मुझ में हार्दिक दिलचस्पी भी लेता है। मुझे यकीन है कि निश्चित समय पर मुझे फ़ोन्तान्का के क़रीब न पाकर वह उदास हो जाता होगा। इसीलिये तो हम कभी-कभी एक-दूसरे की ओर लगभग सिर झुका देते हैं, ख़ास तौर पर तब, जब हम दोनों के दिल ख़ुश होते हैं। जब पूरे दो दिन तक मुलाकात न होने के बाद हम तीसरे दिन मिले, तो हमने अपने टोप लगभग ऊपर उठा लिये थे, किन्तु अच्छा ही हुआ कि ऐन वक़्त पर सम्भल गये, हाथ नीचे कर लिये और एक-दूसरे के प्रति मूक लगाव अनुभव करते हुए पास से गुज़र गये।

मकानों से भी मेरी जान-पहचान है। जब मैं सड़क पर से गुज़रता हूं तो हरेक मकान मानो भागकर मेरे सामने आ जाता है, अपनी सारी खिड़कियों से मुझे गौर से देखता है और लगभग कह उठता है: "नमस्ते, आपका मिज़ाज कैसा है? भगवान की दया से मैं ठीक-ठाक हूं, मई महीने में मेरी एक मंजिल और बढ़ जायेगी।" या फिर: "आपका मिज़ाज कैसा है? मेरी कल मरम्मत होनेवाली है।" या यह कि "मैं तो बस, जलते-जलते ही बचा और बहुत डर गया था।" आदि, आदि। उनमें से कुछ मुझे प्रिय हैं, कुछ मेरे घनिष्ठ मित्र हैं। एक तो इस गर्मी में वास्तुशिल्पी से अपना इलाज करानेवाला है। मैं जान-बूझकर हर दिन उसे देखने जाया करूंगा ताकि उसे कोई क्षति न पहुंच जाये, भगवान रक्षा करे उसकी! .. मगर एक बहुत ही सुन्दर, हल्के गुलाबी रंग के छोटे-से घर का क़िस्सा मैं कभी नहीं भूल सकूंगा। वह पत्थर का बना हुआ छोटा-सा, बहुत ही प्यारा घर था। ऐसी हार्दिकता से मेरी ओर देखा करता था वह, ऐसे घमंड से अपने बेढंगे-भोंडे पड़ोसियों को देखता था कि जब कभी मुझे उसके पास से गुजरने का मौक़ा होता तो मेरा दिल ख़ुशी से भर उठता। अचानक पिछले हफ़्ते इस सड़क पर से जाते हुए मैंने अपने इस दोस्त पर नज़र डाली कि दर्दभरी चीख़ सुनाई दी: "मुझे पीले रंग से रंगा जा रहा है!" वहशी, जंगली! उन्होंने सभी कुछ तो रंग डाला था, स्तम्भ भी, कार्निस भी, और मेरा दोस्त पीला

चिड़िया जैसा हो गया था। इसके कारण ख़ुद मुझे लगभग पीलिया हो गया और मैं अभी तक इस क़िस्मत के मारे और बदसूरत बनाये गये अपने दोस्त को, जिसे दिव्य साम्राज्य* के रंग से रंग दिया गया था, देखने के लिये जाने की हिम्मत नहीं कर पाता।

तो, पाठक, आप समझ गये होंगे कि कैसे मैं सारे पीटर्सबर्ग से परिचित हूं।

मैं पहले कह चुका हूं कि अपनी परेशानी का कारण समझ पाने तक पूरे तीन दिन तक मेरा बुरा हाल रहा। बाहर भी मेरी ऐसी ही हालत रही (यह नहीं है, वह नहीं है, यह कहां चला गया?) – हां और घर पर भी मैं लुटा-लुटा-सा रहा। दो रातों तक मैं यह जानने की कोशिश करता रहा – मेरे इस छोटे-से घर में क्या नहीं है। क्यों वह काटने को दौड़ता है? कुछ भी समझ न पाते हुए मैंने अपनी हरी, धुएं से काली हुई दीवारों और छत को, जिस पर मकड़ी के जाले लटके हुए थे और जिन्हें मेरी नौकरानी मात्र्योना ख़ूब बढ़ाती जा रही थी, परेशानी से देखा, फ़र्नीचर पर फिर ग़ौर से नज़र डाली, हर कुर्सी को बहुत अच्छी तरह से जांचा और यह सोचता रहा कि कहीं यहीं तो कोई मुसीबत नहीं है! (बात यह है कि अगर मेरी एक भी कुर्सी उसी ढंग से रखी हुई नहीं होती, जैसे वह एक दिन पहले थी, तो मैं बेचैनी महसूस करने लगता हूं) खिड़की पर नज़र डाली, मगर बेसूद... दिल को ज़रा भी राहत नहीं मिली! मेरे दिमाग़ में तो मात्र्योना को बुलाने का भी ख़्याल आ गया और मैंने मकड़ी के जालों और सभी तरह की गड़बड़ के लिये उसे बुज़ुर्गाना ढंग से डांट भी दिया। मगर वह तो केवल हैरानी से मुझे देखती और उत्तर में एक भी शब्द कहे बिना कमरे से बाहर चली गयी। चुनांचे मकड़ी के जाले अपनी जगह पर पहले की भांति ही लटके हुए हैं। आख़िर आज सुबह ही मैं अपनी इस परेशानी के कारण का अनुमान लगा पाया। अरे! वे तो मुझे छोड़कर देहाती बंगलों को भागे जा रहे हैं! बाज़ारू शब्दों के लिये क्षमा कीजिये, मगर बढ़िया शब्द-चयन की मुझे सुध ही कहां थी... क्योंकि पीटर्सबर्ग का हर आदमी या तो देहाती बंगले जा चुका था या जा रहा था; क्योंकि बग्घी किराये पर लेता हुआ सम्मानित नज़र आनेवाला हर व्यक्ति मेरे देखते-देखते ही परिवार के प्रतिष्ठित मुखिया का रूप धारण कर लेता था और हर दिन का कामकाज निपटाकर हल्के मन से अपने परिवार के पास, अपने देहाती बंगले की ओर चल देता था, क्योंकि सभी राहगीरों के चेहरे पर एक ख़ास भाव झलक रहा था, जो सामने आ जानेवाले हर व्यक्ति से

---

*टिप्पणियां पृष्ठ १०३ पर देखिये।

लगभग यह कहता प्रतीत हो रहा था : "श्रीमान जी, हम तो बस, चलते-चलाते ही यहां हैं और दो घण्टे बाद अपने देहाती बंगले चले जायेंगे।" अगर कोई खिड़की खुलती, जिसके शीशे पर पहले तो चीनी जैसी सफ़ेद और पतली-पतली उंगलियां बज उठतीं और फिर कोई सुन्दर लड़की बाहर झांककर फूलों सहित गमले बेचनेवाले को बुलाती, तो फ़ौरन मेरे दिमाग़ में यही ख़याल आता कि ये फूलोंवाले गमले नगर के उमस भरे फ़्लैट में वसन्त तथा फूलों का आनन्द लेने के लिये नहीं, बल्कि बहुत शीघ्र ही अपने साथ देहाती बंगले में ले जाने के लिये ख़रीदे जा रहे हैं। इतना ही नहीं, अपनी इस नयी और अपने ढंग की अनूठी खोज में मैंने इतनी सफलता प्राप्त कर ली थी कि केवल शक्ल-सूरत देखकर ही बिल्कुल सही-सही यह बता सकता था कि कौन किस देहाती बंगले में रहता है।

कामेन्नी और अप्तेकार्स्की द्वीपों या पीटरगोफ़ सड़क पर रहनेवालों के विशेष लक्षण थे – नज़ाकत-नफ़ासत, गर्मियों के फ़ैशनदार सूट और शानदार बग्घियां, जिनमें वे शहर आते थे। पार्गोलोवो और उससे आगे रहनेवालों को देखते ही बुद्धिमानी और धीरता-गम्भीरता की "छाप" मन पर पड़ती थी। ख़ुश और मस्त-मौजी को देखते ही पता चल जाता था कि वह क्रेस्तोव्स्की द्वीप से आया है। जब मैं सभी तरह के फ़र्नीचर, मेज़ों-कुर्सियों, तुर्की और ग़ैरतुर्की सोफ़ों और घर के दूसरे सामानों से लदे हुए छकड़े, जिनके ऊपर अक्सर मालिक के सामान की अपनी आंख की पुतली की तरह रक्षा करनेवाली दुबली-पतली बावर्चिन बैठी होती थी, और छकड़ों के साथ-साथ हाथों में लगामें थामे हुए धीरे-धीरे चलनेवाले छकड़ावानों का लम्बा जुलूस देखता या फिर जब मुझे नेवा अथवा फ़ोन्तान्का में घरेलू सामान से ठसाठस लदी-फंदी नावें चोर्नाया नदी अथवा द्वीपों की ओर रेंगती दिखाई देतीं, तो वे छकड़े और वे नावें मेरी नज़र में दस गुना, सौ गुना बढ़ जातीं। मुझे लगता कि सभी कुछ उठकर चल पड़ा है, पूरे के पूरे काफ़िलों की शक्ल में सभी कुछ देहाती बंगलों में बसा जा रहा है; मुझे लगता कि पीटर्सबर्ग पर वीराना बन जाने का ख़तरा मंडरा रहा है। तो आख़िर मुझे शर्म आई, दुःख हुआ और मैं उदास हो उठा; मेरे जाने के लिये न तो कोई जगह ही थी और देहाती बंगले में जाने का न कोई कारण ही था। मैं हर छकड़े के साथ, छकड़े को किराये पर लेनेवाले हर प्रतिष्ठित श्रीमान के साथ जाने को तैयार था; मगर एक ने भी, किसी ने भी, तो मुझे अपने साथ चलने को नहीं कहा; वे तो मानो मुझे भूल गये थे, मानो मैं उन सब के लिये वास्तव में ही पराया था।

मैं बहुत देर तक और बहुत काफ़ी भटकता रहा और जैसा कि आम तौर पर मेरे साथ होता है, पूरी तरह अपने को भूल गया, कि अचानक मैंने अपने को नगर से

बाहर पाया। आन की आन में मैं खिल उठा, मैंने अवरोध पार किया और जोते-बोये खेतों तथा चरागाहों के बीच से चल दिया। मैं थकान अनुभव नहीं कर रहा था और अपने अंग-अंग में मुझे केवल ऐसी अनुभूति हो रही थी कि मेरी आत्मा से कोई बोझ हटता जा रहा है। सवारियों पर आते-जाते लोग ऐसी हार्दिकता से मेरी ओर देखते थे कि बस, मेरा अभिवादन करते-करते ही रह जाते थे। किसी कारणवश सभी बेहद ख़ुश थे, सभी सिगार के कश लगा रहे थे। मैं भी ख़ुश था, जैसा कि मेरे साथ पहले कभी नहीं हुआ था। मैंने तो जैसे अचानक अपने को इटली में अनुभव किया – लगभग बीमार मुझ नगरवासी को, जिसका नगर की दीवारों में सिर्फ़ दम ही नहीं घुट गया था, प्रकृति ने ऐसे अभिभूत कर लिया।

हमारे पीटर्सबर्ग की प्रकृति में कुछ ऐसा मर्मस्पर्शी है जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। वसन्त के आगमन पर हमारे पीटर्सबर्ग की प्रकृति जब अपनी सारी शक्ति, ईश्वरदत्त अपने सभी वरदानों का प्रदर्शन करती है, खिलती है, सजधज उठती है, चटकीले फूलों से अपना शृंगार करती है, तो उसमें कुछ ऐसी मर्मस्पर्शता होती है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता ... इस संबंध में मुझे बरबस उस रुग्णा, उस मरियल लड़की का स्मरण हो आता है जिसकी ओर कभी तो हम अफ़सोस से, कभी सहानुभूतिपूर्ण स्नेह से देखते हैं, कभी ध्यान ही नहीं देते, मगर जो अचानक, घड़ी-भर को बिल्कुल अप्रत्याशित और अव्याख्य ढंग से ऐसी मनमोहिनी हो उठती है कि हम आश्चर्यचकित और आनन्द-विभोर होकर अपने से यह पूछने को विवश हो जाते हैं कि किस शक्ति ने इन उदास और खोयी-खोयी आंखों में ऐसी ज्योति पैदा कर दी है? इन मुरझाये और सूखे गालों पर यह लाली कहां से आ गयी है? इस कोमल नाक-नक़्शे पर भावावेश क्यों झलक उठा है? किस कारण उसकी सांसें ऐसे तेज़ी से आ-जा रही हैं? किस चीज़ से इस बेचारी लड़की के चेहरे पर अचानक शक्ति, सजीवता और सुन्दरता छलक उठी है, किस कारण वह ऐसी मुस्कान से चमक उठा है, चमचमाती हंसी से जगमगा उठा है? हम इधर-उधर नज़र दौड़ाते हैं, किसी को ढूंढ़ते हैं, कारण का अनुमान लगाते हैं... मगर वह क्षण गुज़र जाता है और शायद अगले ही दिन हमें पहले की भांति फिर वही खोयी-खोयी, सोच में डूबी हुई आंखें, वही मुरझाया चेहरा और चाल-ढाल में वही विनय, वही सहमापन, यहां तक कि क्षणिक सजीवता के लिये पश्चाताप, मृतप्राय वेदना और अवसाद के अवशेष भी दिखाई देते हैं... और हमें अफ़सोस होने लगता है कि यह क्षणिक सुन्दरता इतनी जल्दी मुरझा गई, कि इसे कभी लौटाया नहीं जा सकता, कि व्यर्थ और कपटपूर्ण

ढंग से ही उसकी लौ चमकी — हमें इस बात का अफ़सोस होता है कि उससे प्यार करने का भी तो वक़्त नहीं मिला...

फिर भी मेरी रात मेरे दिन से बेहतर रही। यह ऐसे हुआ :

मैं बहुत देर से शहर में लौटा और जब मैं अपने घर के क़रीब पहुंचा तो रात के दस बज चुके थे। मेरा रास्ता नहर के किनारे-किनारे जाता था और रात को इतनी देर से यहां आदमी का नाम-निशान भी दिखाई नहीं देता। बात यह है कि मैं नगर के दूरस्थ भाग में रहता हूं। मैं चला जा रहा था और गुनगुना रहा था, क्योंकि जब मेरा दिल ख़ुश होता है, तो मैं हर उस सुखी आदमी की भांति अवश्य कुछ न कुछ गुनगुनाने लगता हूं जिसके न तो मित्र और न ऐसे भले परिचित ही होते हैं, जिनके साथ वह अपनी ख़ुशी बांट सके। अचानक मेरे साथ एक बिल्कुल अप्रत्याशित घटना घट गई।

नहर के जंगले का सहारा लिये, उस पर कुहनियां टिकाये हुए एक नारी रास्ते से ज़रा हटकर खड़ी थी। सम्भवतः वह नहर के गंदले पानी को बहुत ध्यान से देख रही थी। वह प्यारी-सी पीली टोपी और सुन्दर-सा काला लबादा पहने थी। "यह युवती और अवश्य ही श्यामकेशिनी है," मैंने सोचा। जब मैं सांस रोके और बहुत जोर से धड़कते दिल के साथ उसके पास से गुज़रा, तो शायद उसने मेरे पैरों की आहट नहीं सुनी, वह हिली-डुली भी नहीं। "अजीब बात है!" मैंने सोचा। "शायद वह किसी ख़याल में बहुत गहरी डूबी हुई है।" अचानक मैं जहां का तहां ठिठक कर रह गया। मुझे दबी-घुटी-सी सिसकी सुनाई दी। हां! मुझे भ्रम नहीं हुआ था — लड़की रो रही थी और रह-रह कर सिसक रही थी। हे भगवान! मेरा दिल बैठ गया। औरतों के मामले में मैं बेशक बहुत झेंपू हूं, मगर यह तो विशेष क्षण था! .. मैं लौटा, उसकी तरफ़ बढ़ा और अगर मुझे यह मालूम न होता कि कुलीनों से सम्बन्धित रूसी उपन्यासों में हज़ारों बार "श्रीमती" सम्बोधन का उपयोग हो चुका है, तो मैंने अवश्य ही बस, उसे ऐसे सम्बोधित किया होता। इसी चीज़ ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया। मगर जब तक मैं उचित शब्द ढूंढ़ पाऊं, लड़की चौंकी, उसने अपने इर्दगिर्द नज़र डाली, सम्भली और नज़र झुकाये हुए मेरे पास से गुज़रकर टतबन्ध पर बढ़ चली। मैं उसी क्षण उसके पीछे-पीछे हो लिया, मगर यह अनुभव कर उसने सड़क पार की और पटरी पर चलने लगी। सड़क के उस ओर जाने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। मेरा दिल जाल में फंसे पंछी की तरह ज़ोर से धड़क रहा था। इसी क्षण एक ऐसी बात हो गयी जिसने मुझे उबार लिया।

ख़ासी अच्छी उम्र का एक महाशय, जो अच्छा फ़ाक कोट पहने था, मगर जिसकी चाल-ढाल अच्छी नहीं कही जा सकती थी, अचानक मेरी उस अपरिचिता



के क़रीब पटरी पर दिखाई दिया। वह लड़खड़ाता और सावधानी से दीवार का सहारा लेता हुआ चल रहा था। लड़की तो सहमी-सहमी और तनी हुई बहुत तेज़ी से चली जा रही थी, उन सभी लड़कियों की तरह जो यह नहीं चाहतीं कि रात के समय कोई उन्हें घर तक पहुंचाने के लिये अपने को पेश करे। यदि मेरा भाग्य इस लड़खड़ाते महाशय के दिमाग में असाधारण उपायों का सहारा लेने का विचार पैदा न कर देता तो, निश्चय ही, वह उस लड़की के करीब न पहुंच पाता। मेरा यह महाशय कुछ कहे-सुने बिना अचानक ही पूरे ज़ोर से भागने लगा और भागता हुआ मेरी इस अपरिचिता के निकट पहुंचने लगा। वह हवा की तरह तेज़ी से चल रही थी, मगर लड़खड़ाता हुआ महाशय उसके क़रीब होता जा रहा था, उसके बिल्कुल क़रीब जा पहुंचा और लड़की चिल्ला उठी... मैंने उस बढ़िया गंठीली छड़ी के लिये, जो इस वक़्त मेरे दायें हाथ में थी, अपने भाग्य को सराहा। मैं पलक झपकते में उस पटरी पर जा पहुंचा और पलक झपकते में ही वह बिन बुलाया मेहमान भी यह समझ गया कि क़िस्सा क्या है। उसने डंडे के अकाट्य तर्क को समझा, चुपचाप पीछे हट गया और जब हम काफ़ी आगे चले गये तो काफ़ी भारी-भरकम शब्दों में मुझे भला-बुरा कहने लगा। किन्तु उसके शब्द हमें बहुत कम ही सुनाई दिये।

"लाइये, अपना हाथ मुझे दे दीजिये," मैंने अपनी अपरिचिता से कहा। "तब उसे हमारा पीछा करने की जुर्रत नहीं होगी।"

उसने चुपचाप अपना हाथ मेरी तरफ बढ़ा दिया, जो अभी तक डर और घबराहट के कारण कांप रहा था। ओ, बिन बुलाये श्रीमान! कितना आभारी था मैं तुम्हारा इस क्षण! मैंने लड़की पर उड़ती-सी नजर डाली – वह बहुत ही प्यारी और कृष्ण केशिनी थी – मैंने ठीक ही भांपा था। उसकी काली बरौनियों पर कुछ ही क्षण पहले के भय या उससे भी पहले के दुःख के – मुझे यह मालूम नहीं – अश्रुकण चमक रहे थे। मगर होंठों पर मुस्कान खिल उठी थी। उसने भी कनखियों से मुझे देखा, तनिक शर्माई और नजर नीची कर ली।

"देख रही हूं न, उस वक़्त आपको मुझ से कन्नी नहीं काटनी चाहिये थी। अगर मैं आपके पास होता, तो ऐसी कोई बात ही न होती..."

"मगर मैं तो आपको जानती नहीं थी। मैंने सोचा कि आप भी..."

"तो क्या अब आप मुझे जानती हैं?"

"कुछ-कुछ। मिसाल के तौर पर, यह बताइये कि आप इस तरह कांप क्यों रहे हैं?"

"ओह, तो आप फ़ौरन ही भांप गयीं!" मैंने इस बात से ख़ुश होते हुए उत्तर दिया कि मेरी यह सुन्दरी बहुत समझदार है। यह तो सोने में सुगन्धवाली बात है। "हां, आप फ़ौरन ही यह भांप गयीं कि किससे आपका वास्ता पड़ा है। यह सही है कि मैं औरतों से झेंपता हूं, मानता हूं कि इस समय मैं उतना ही घबरा रहा हूं, जितनी एक मिनट पहले, जब उस महाशय ने आपको डरा दिया था, आप घबरा रही थीं... इस वक़्त मैं कुछ डरा हुआ हूं। यह तो सचमुच सपना है और मैंने तो सपने में भी यह कल्पना नहीं की थी कि कभी किसी नारी से बातचीत करूंगा।"

"यह आप क्या कह रहे हैं? यह सच है क्या?.."

"हां, अगर मेरा यह हाथ कांप रहा है, तो इसीलिये कि आपके इस हाथ जैसा छोटा और प्यारा-सा हाथ उसने कभी नहीं थामा। मैं औरतों की संगत का बिल्कुल आदी नहीं रहा; मेरा मतलब यह कि मैं कभी उसका आदी हुआ ही नहीं था। मैं तो एकदम एकाकी हूं। मैं तो यह भी नहीं जानता कि उनसे बातचीत कैसे करूं। अब भी यह नहीं जानता कि आप से कोई बेहूदा बात तो नहीं कह बैठा? आप मुझे साफ़-साफ़ बता दीजिये। आपको यक़ीन दिलाता हूं कि मेरा बुरा मानने का स्वभाव नहीं है..."

"नहीं, नहीं, ऐसा कुछ नहीं है, बात बल्कि इसके उलट है। पर यदि आप साफ़गोई ही चाहते हैं, तो मैं कहूंगी कि नारियों को ऐसी झेंप अच्छी लगती है। अगर आप इससे भी अधिक कुछ जानना चाहते हैं, तो कहूंगी कि मुझे भी यह पसन्द है और घर पहुंचने तक मैं आपको खदेड़ूंगी नहीं।"

"आप आन की आन में मेरी झेंप दूर कर देंगी," मैंने ख़ुशी से हांफते हुए कहना शुरू किया, "और तब – अलविदा मेरे सारे साधन..."

"साधन? कैसे साधन, क्या मतलब है आपका? अब यह भोंडी बात है।"

"क्षमा चाहता हूं, फिर कभी ऐसी बात नहीं कहूंगा, मेरी जबान से निकल गयी। मगर आप यह कैसे चाहती हैं कि ऐसे क्षण में यह इच्छा न पैदा हो कि..."

"आप पसन्द आयें?"

"हां, हां। दया कीजिये, भगवान के लिये मुझ पर दया कीजिये। आप ख़ुद ही तो सोचिये कि मैं क्या हूं! मैं छब्बीस साल का हो चुका हूं और आज तक कभी किसी नारी से मिला-जुला नहीं। तो कैसे मैं अच्छे ढंग से, ख़ूबसूरती से और मतलब की बात कर सकता हूं? अगर मैं खुलकर, साफ़-साफ़ सब कुछ कह दूंगा, तो आप ही के लिये तो अच्छा रहेगा... जब मेरा दिल कुछ कहने को हुलस रहा हो, तो मैं चुप नहीं रह सकता। पर, ख़ैर जो भी हो... आप विश्वास करेंगी, किसी एक भी

औरत से मेरा कभी वास्ता नहीं पड़ा ! किसी से परिचय तक भी नहीं ! बस, हर दिन यह सपना ही देखता रहता हूं कि आख़िर कभी तो किसी न किसी से मुलाक़ात होगी। और, काश आप यह जान सकतीं कि इस तरह कितनी बार मुझे प्यार हुआ है ! . ."

"मगर कैसे, किससे ? . ."

"किसी से नहीं, आदर्श से, उससे जो मुझे सपने में दिखाई देती है। मैं कल्पना में पूरे के पूरे उपन्यास गढ़ लेता हूं। ओह, आप मुझे नहीं जानतीं ! हां, यह सही है कि दो-तीन नारियों से मेरी मुलाक़ात हो चुकी है, मगर वे भी कोई नारियां थीं ? वे सभी ऐसी गृहस्थनें थीं कि . . . पर यदि मैं आपको यह बताऊं तो आप हंस पड़ेंगी कि कई बार मैंने सड़क पर ऐसे ही किसी रईसज़ादी से बात करने की सोची है। ज़ाहिर है कि जब वह अकेली हो। हां, सो भी सहमे-सहमे, आदर से, भावनाओं के साथ। मैं उससे कहूंगा कि अकेला मरा जा रहा हूं, कि वह मुझे दुतकारे नहीं, कि किसी भी औरत से जान-पहचान करने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है। मैं उसे यह समझाऊंगा कि यह तो नारी का कर्त्तव्य भी है कि वह मुझ जैसे बदक़िस्मत आदमी की ऐसी सहमी-सी प्रार्थना को न ठुकराये। यों भी, आख़िर मैं उससे इतना ही तो चाहूंगा कि वह मुझे भाई मानते हुए सहानुभूति के दो शब्द कह दे, पास आते ही मुझे खदेड़ न दे, मेरे शब्दों पर विश्वास करे, मैं जो कहूं उसे सुन ले, इच्छा होने पर मेरी हंसी उड़ा ले, मुझे आशा दिलाये, मुझसे दो शब्द, केवल दो शब्द कह दे और फिर चाहे कभी भी हमारी मुलाक़ात न हो ! . . मगर आप हंस रही हैं . . . पर ख़ैर, मैं इसीलिये तो आपको यह सब कुछ बता रहा हूं . . ."

"बुरा नहीं मानिये ! मैं इसलिये हंस रही हूं कि आप तो ख़ुद ही अपने दुश्मन हैं। अगर आपने कोशिश की होती, तो सफल हो ही जाते, बेशक सड़क पर ही ऐसा होता, मामला जितना सीधा-सादा होता, उतना ही अच्छा रहता . . . कोई भी दयालु औरत, अगर वह बुद्धू न होती या उस क्षण किसी ख़ास वजह से बहुत झल्लायी हुई न होती, तो उन दो शब्दों को कहे बिना, जिन्हें आप ऐसे सहमे-सहमे ढंग से सुनना चाहते हैं, कभी आपको भगा देने की जुर्रत न करती . . . मगर मैं यह क्या कह रही हूं ! निश्चय ही उसने आपको पागल समझा होता। मैंने तो अपने को ध्यान में रखते हुए ऐसा कहा है। ख़ुद ही मैं कौन बहुत अधिक जानती हूं इस दुनिया के लोगों के रंग-ढंग को !"

"ओह, बहुत आभारी हूं मैं आपका," मैं चिल्ला उठा, "आप नहीं जानतीं कि आपने मेरे लिये क्या किया है !"

"रहने दीजिये, रहने दीजिये! मगर यह बताइये कि आपने यह कैसे जान लिया कि मैं ही ऐसी नारी हूं जिसके साथ ... मेरा मतलब, जिसे आपने ध्यान देने और अपनी मैत्री के योग्य समझा ... थोड़े में, जो आपके मुताबिक गृहस्थन नहीं है। आपने मुझसे बात करने का क्यों निर्णय किया?"

"क्यों? क्यों? मगर आप तो अकेली थीं, वह महाशय हद से आगे बढ़ गया था, रात का वक़्त ठहरा; आपको यह मानना होगा कि ऐसे क्षण में तो आदमी का ऐसा कर्तव्य ही हो जाता है ..."

"नहीं, नहीं, में इसके पहले की बात कर रही हूं, तब की, जब आप सड़क के उस ओर थे। आप तो तभी मेरे पास आना चाहते थे न?"

"वहां, सड़क के उस ओर? मगर मैं, मैं वास्तव में ही यह नहीं जानता कि इसका कैसे जवाब दूं। मुझे डर लगता है कि ... आप से कहूं कि आज मैं बहुत रंग में था, मैं चला जा रहा था, गा रहा था। मैं आज शहर के बाहर होकर आया था; ऐसे ख़ुशी के क्षण मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किये थे। आप ... हो सकता है कि मुझे ऐसा लगा ही हो ... मैं माफ़ी चाहूंगा, अगर मैं आपको याद दिला दूं – मुझे लगा कि आप रो रही हैं और मैं ... मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सका ... मेरे दिल को कुछ होने लगा ... हे भगवान! तो क्या मुझे आपके लिये पीड़ा नहीं हो सकती थी? तो क्या आपके प्रति भ्रातृवत् समवेदना अनुभव करना पाप था? .. समवेदना कहने के लिये मुझे क्षमा कीजिये ... मतलब यह कि अगर मेरे मन ने बरबस आपके पास आना चाहा था तो क्या आप इससे नाराज़ हो सकती थीं? .."

"बस, बस, रहने दीजिये, और कुछ नहीं कहियेगा ..." लड़की ने नज़र झुकाये और मेरा हाथ दबाते हुए कहा। "मैं ख़ुद दोषी हूं कि मैंने इसकी चर्चा शुरू की। मगर मैं ख़ुश हूं कि आपके बारे में मुझसे भूल नहीं हुई ... तो लीजिये मेरा घर आ गया। मुझे यहां, इस कूचे में जाना है, बस, कुछ ही क़दम और ... तो विदा, बहुत धन्यवाद ..."

"तो क्या, तो क्या हम फिर कभी नहीं मिलेंगे? ... तो क्या यही अन्त है?"

"देखिये न," लड़की ने हंसते हुए कहा। "शुरू में आप सिर्फ़ दो शब्द सुनना चाहते थे और अब ... पर ख़ैर मैं आप से कुछ नहीं कहूंगी ... शायद हम फिर मिलें ..."

"मैं कल यहां आऊंगा," मैंने कहा। "ओह, माफ़ कीजियेगा, मैं तो आप से मांग करने लगा हूं ..."

"हां, आप बहुत जल्दबाज़ हैं ... आप तो लगभग मांग कर रहे हैं ..."

"सुनिये, कृपया सुनिये तो!" मैंने उसे रोका, "अगर मैं फिर से आपको कोई ऐसी-वैसी बात कह दूं, तो मुझे क्षमा कीजियेगा... तो बात यह है कि मैं कल यहां आये बिना रह ही नहीं सकता। मैं सपनों की दुनिया में रहता हूं। मेरा वास्तविक जीवन इतना कम है कि मेरे लिये ऐसे, इस वक्त जैसे क्षण इतने दुर्लभ हैं कि मैं उन्हें अपनी कल्पना में दोहराये बिना नहीं रह सकता। मैं रात-भर, हफ़्ते-भर, साल-भर आपके ही सपने देखता रहूंगा। मैं अवश्य ही कल यहां, यहीं, इसी जगह, इसी वक्त आऊंगा और आज का स्मरण करके ख़ुशी महसूस करूंगा। यह जगह मुझे प्रिय हो गयी है। पीटर्सबर्ग में मेरे लिये ऐसी दो-तीन जगहें हैं। एक बार तो मैं यादों के कारण आपकी तरह रो भी पड़ा था... कौन जाने, दस मिनट पहले शायद आप भी स्मृतियों के कारण ही रो रही थीं... मगर माफ़ कीजिये, मैं फिर बहक गया हूं। शायद इस जगह आप कभी बहुत ही भाग्यशाली रही होंगी..."

"अच्छी बात है," लड़की बोली। "सम्भवतः मैं कल यहां, दस बजे ही आऊंगी। देख रही हूं कि मैं आपको मना नहीं कर सकती... बात यह है कि मुझे यहां आना ही है। यह मत समझियेगा कि मैं आपको प्रेम-मिलन के लिये बुला रही हूं। मैं आपको चेतावनी देती हूं कि मुझे अपने लिये ही यहां आना है। समझे न... तो मैं आपसे साफ़-साफ़ कहे देती हूं कि अगर आप भी यहां आयेंगे, तो इसमें कोई बुराई नहीं होगी। पहली बात तो यह है कि आज जैसी ही फिर कोई बुरी घटना हो सकती है, मगर ख़ैर, बात सिर्फ़ इतनी ही नहीं है... थोड़े में, मैं आपसे महज़ मिलना चाहती हूं... ताकि आपको दो शब्द कह सकूं। मगर इससे मेरे बारे में आप ग़लत धारणा तो नहीं बना लेंगे? यह मत समझियेगा कि मैं ऐसे आसानी से लोगों से मिलने को तैयार हो जाती हूं... मैं आपसे भी न मिलती अगर... पर ख़ैर, इसे मेरा राज़ ही रहने दीजिये! लेकिन एक शर्त है..."

"शर्त! बोलिये, कहिये, सब कुछ पहले से ही कह दीजिये। मैं हर चीज़ के लिये तैयार हूं, सब कुछ करने को राज़ी हूं," मैं ख़ुशी से चिल्ला उठा। "अपने बारे में मैं आपको पूरा यकीन दिलाता हूं – आपकी हर बात मानूंगा, आपकी इज़्ज़त करूंगा... आप तो मुझे जानती ही हैं..."

"जानती हूं, इसीलिये तो आपको कल आने को कह रही हूं," लड़की ने हंसते हुए कहा। "बहुत अच्छी तरह से जानती हूं आपको। मगर देखिये एक शर्त पर आइयेगा (मैं आपसे जो अनुरोध करूंगी उसे पूरा करने की कृपा कीजियेगा – मैं आपसे सब कुछ साफ़-साफ़ कहे दे रही हूं), सब से पहले तो यह कि मुझे प्यार नहीं कर बैठियेगा ... आपको विश्वास दिलाती हूं कि ऐसा हरगिज़ नहीं करना

चाहिये। दोस्त बनने को मैं तैयार हूं, यह लीजिये मेरा हाथ... मगर प्यार नहीं कीजियेगा, मैं आपकी मिन्नत करती हूं!"

"मैं क़सम खाता हूं!" उसका हाथ थामते हुए मैं चिल्ला उठा...

"बस, बस, क़सम नहीं खाइये। मैं तो जानती हूं कि आप बारूद की तरह फट सकते हैं। मेरे इन शब्दों का बुरा नहीं मानियेगा। काश, आपको यह मालूम होता... मेरा भी तो कोई ऐसा नहीं है जिस से मैं अपने दिल की बात कह सकूं, जिससे सलाह ले सकूं। ज़ाहिर है कि सड़क पर तो सलाह देनेवाले खोजे नहीं जाते। हां, आपकी बात दूसरी है। मैं आपको ऐसे जानती हूं मानो हम बीस साल से दोस्त हों... आप बेवफ़ाई तो नहीं करेंगे न?.."

"आप ख़ुद ही देख लेंगी... नहीं जानता कि इन बीच के चौबीस घण्टों तक कैसे जिन्दा रहूंगा।"

"ख़ूब गहरी नींद सोइये। शुभरात्रि – और यह याद रखियेगा कि मैं आप पर विश्वास करती हूं। अभी, कुछ ही देर पहले आपने कितना ठीक कहा था – क्या हर भावना, यहां तक कि भ्रातृवत समवेदना को सफ़ाई देना भी ज़रूरी होता है! जानते हैं इतनी अच्छी बात कही थी यह आपने कि मेरे दिमाग़ में उसी वक़्त आपको अपना राज़दान बनाने का ख़याल आया था..."

"किस राज़ का? भगवान के लिये कहिये तो?"

"कल। फ़िलहाल इसे मेरा राज़ ही रहने दीजिये। आपके लिये तो यह बेहतर ही रहेगा – कम से कम दूर से तो रोमांस जैसा प्रतीत होगा। शायद मैं कल ही आप से यह राज़ कह दूं, शायद न कहूं... इसके पहले मैं आपसे अभी और कुछ बातचीत करना चाहूंगी, हम एक-दूसरे को और अधिक अच्छी तरह जान जायेंगे..."

"अरे हां, मैं आपको अपने बारे में कल ही सब कुछ बता दूंगा! मगर यह क्या है? मेरे साथ तो जैसे कोई चमत्कार हो रहा है... कहां हूं मैं, मेरे भगवान? कहिये तो क्या आप इस बात से दुःखी हैं कि मुझसे नाराज़ नहीं हुईं, जैसे कि किसी दूसरी ने किया होता, कि मुझे शुरू में ही दूर नहीं भगाया? केवल दो मिनट, और आपने मुझे सदा-सदा के लिये भाग्यशाली बना दिया। हां, हां, भाग्यशाली! कौन जाने, शायद आपने ख़ुद मेरे साथ ही मेरी सुलह करा दी हो, मेरे सन्देहों को दूर कर दिया हो... हो सकता है कि मुझ पर ऐसे क्षण आते हों... हां, हां, मैं कल आपको सब कुछ बता दूंगा, आप सब कुछ जान जायेंगी..."

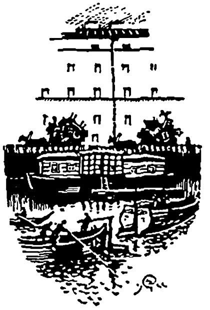
"अच्छी बात है, तो ऐसा ही सही, आप ही शुरू करेंगे अपनी कहानी..."

"मुझे मंज़ूर है।"

"नमस्ते!"

"नमस्ते!"

हम विदा हुए। मैं रात-भर घूमता ही रहा, घर लौटने की हिम्मत ही नहीं कर सका। मैं इतना अधिक खुश था... अगले दिन तक!



दूसरी रात

"तो लीजिये, जिन्दा रह गये!" लड़की ने मेरे दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर हंसते हुए कहा।

"मैं तो दो घण्टे से यहां हूं। आप नहीं जानतीं कि दिनभर मेरी क्या हालत रही!"

"जानती हूं, जानती हूं... तो काम की बात हो जाये! जानते हैं कि मैं यहां क्यों आई हूं? कल की तरह फ़जूल की बातें करने नहीं। तो सुनिये – आगे हमें समझदारी से काम लेना चाहिये। मैं इन सभी चीजों के बारे में कल देर तक सोचती रही।"

"किस चीज, किस चीज के बारे में समझदारी से काम लेना चाहिये? अपनी ओर से मैं इसके लिये तैयार हूं। मगर सच यह है कि मेरे जीवन में तो अब से अधिक समझदारी की कभी कोई बात हुई ही नहीं।"

"सच? सबसे पहले तो मैं यह अनुरोध करती हूं कि मेरे दोनों हाथों को ऐसे नहीं दबाइये। दूसरे, मैं आपको यह बताना चाहती हूं कि आपके बारे में आज मैंने बहुत देर तक सोचा।"

"और किस नतीजे पर पहुंचीं?"

"किस नतीजे पर? इस नतीजे पर कि सब कुछ फिर से शुरू करने चाहियें, क्योंकि सभी बातों का मैंने आज यह नतीजा निकाला कि अभी मैं आपको बिल्कुल नहीं जानती हूं, कि कल मैंने एक बच्ची जैसा, एक छोकरी का सा व्यवहार किया। स्पष्ट है कि मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची कि मेरा दयालु हृदय ही इसके लिये दोषी है। यों कहना चाहिये कि मैंने अपनी ही प्रशंसा की, जैसा कि हमेशा ही उस समय होता है,

जब हम अपना विश्लेषण करने लगते हैं। तो अपनी भूल सुधारने के लिये मैंने आपके बारे में अधिक से अधिक जानने का निर्णय किया है। पर चूंकि और किसी से आपके बारे में जानकारी नहीं मिल सकती, तो आप ही को मुझे सब कुछ, अपनी गुप्त से गुप्त बातें बतानी चाहिये। तो, आप किस तरह के व्यक्ति हैं? जल्दी कीजिये – शुरू कीजिये, अपनी सारी कहानी सुनाइयें।"

"कहानी!" मैं घबराकर चिल्ला उठा। "कहानी! किसने आप से यह कहा कि मेरी कोई कहानी है? मेरी कोई कहानी नहीं है..."

"कहानी नहीं है, तो आपने ज़िन्दगी कैसे गुज़ारी?" उसने हंसते हुए मेरी बात काटी।

"किसी भी तरह की कहानी के बिना! कैसे जिया हूं, जैसे कि कहा जाता है – अपने तक ही, यानी एकदम एकाकी – एकाकी, पूरी तरह एकाकी – आप एकाकी होने का मतलब समझती हैं?"

"एकाकी, कैसे एकाकी? आपका मतलब है कि आप कभी किसी से मिले-जुले नहीं?"

"ओह, नहीं, मिलता-जुलता तो हूं, मगर फिर भी मैं एकाकी हूं।"

"तो क्या, क्या आप कभी किसी से बातचीत नहीं करते?"

"अगर बिल्कुल सही-सही कहा जाये, तो नहीं।"

"आप हैं कौन, यह स्पष्ट कीजिये! ज़रा रुकिये, लगता है कि मैं आपके बारे में कुछ-कुछ भांप रही हूं। सम्भवतः मेरी भांति आपको भी नानी है। वह अंधी है, एक ज़माने से मुझे कहीं भी नहीं जाने देती और इसलिये मैं बातचीत करना बिल्कुल भूल गयी हूं। दो साल पहले, जब मैं एकबार शरारत कर बैठी थी, तो उसने समझ लिया था कि मैं हाथ से निकल गयी। उसने मुझे अपने पास बुलाया और सेफ़्टी पिन से मेरा फ्राक अपने फ्राक के साथ जोड़ लिया। तब से हम दिन भर ऐसे ही बैठी रहती हैं। वह बेशक अंधी है, फिर भी मोज़े बुनती रहती है और मुझे उसके पास बैठे रहकर या तो सिलाई करनी पड़ती है या उसे किताब पढ़ कर सुनानी होती है। कैसी अजीब-सी बात है यह – दो साल से ऐसे पिन से मुझे अपने साथ जोड़ कर बिठा रखा है..."

"हे भगवान! यह तो बड़ी बदक़िस्मती है! हां, पर मेरी तो ऐसी नानी नहीं है!"

"अगर नानी नहीं है, तो फिर आप क्यों घर में बैठे रहते हैं?.."

"सुनिये, आप यह जानना चाहती हैं कि मैं कौन हूं?"
"हां, हां!"
"बिल्कुल ठीक-ठीक?"
"बिल्कुल ठीक-ठीक!"
"अच्छी बात है! मैं—मैं अपने ढंग का एक व्यक्ति हूं।"
"अपने ढंग का? किस ढंग का?" लड़की ठहाका मार कर ऐसे चिल्ला उठी मानो उसे साल-भर हंसने का मौका ही न मिला हो। "हां, आप ख़ूब मजेदार आदमी हैं! देखिये, यहां यह बेंच है, आइये हम इस पर बैठ जायें! यहां कभी कोई नहीं आता, कोई भी हमारी बातचीत नहीं सुनेगा और—आप अपनी कहानी सुनाना शुरू कीजिये! आप मुझे यह तो यकीन नहीं दिला सकेंगे कि आपकी कोई कहानी नहीं है। आपकी कहानी तो जरूर है, पर आप उसे छिपा रहे हैं। सब से पहले तो यह बताइये कि अपने ढंग का आदमी क्या होता है?"
"अपने ढंग का? अपने ढंग का आदमी, वह अजीब-सा, वह बड़ा हास्यास्पद आदमी होता है!" उसकी बच्चों जैसी हंसी का साथ देते हुए मैं ख़ुद भी जोर से हंस दिया। "यह तो इस तरह का मिज़ाज होता है। सुनिये—आप यह जानती हैं कि स्वप्नदर्शी क्या होता है?"
"स्वप्नदर्शी! अजी वाह, यह कौन नहीं जानता? मैं ख़ुद भी स्वप्नदर्शी हूं! नानी के पास बैठे-बैठे कैसे-कैसे ख़याल मेरे दिमाग़ में नहीं आते! तब मैं सपने देखने लगती हूं और यह तक कल्पना कर लेती हूं कि चीनी राजकुमार से मेरी शादी हो गई है... कभी-कभी सपने देखना भी अच्छा होता है! मगर शायद नहीं, भगवान ही जाने! ख़ास तौर पर तब जब इसके सिवा कुछ और भी सोचने को हो," लड़की ने गम्भीरतापूर्वक इतना और जोड़ दिया।
"बहुत ख़ूब! अगर आप चीनी राजकुमार के साथ अपनी शादी का सपना देख चुकी हैं, तो अवश्य ही मुझे समझ जायेंगी। मगर सुनिये तो—अरे हां, मैं तो अभी तक आपका नाम भी नहीं जानता?"
"यह भी अच्छी रही! बहुत जल्द ख़याल आया इसका आपको!"
"हे भगवान! मैं इतना ख़ुश था कि यह बात ही दिमाग़ में नहीं आई..."
"मेरा नाम नास्तेन्का है।"

"नास्तेन्का! बस, इतना ही?"

"इतना ही! आपके लिये क्या इतना कम है, लालची कहीं के!"

"कम है? इसके उलट, बहुत है, बहुत ही ज्यादा है। नास्तेन्का, आप अगर मुझे पहली ही बार से कुलनाम के बिना, केवल नास्तेन्का, कहने की अनुमति दे रही हैं, तो निश्चय ही आप बहुत दयालु लड़की हैं।"

"सो तो हूं ही! तो कहते जाइये!"

"तो सुनिये, नास्तेन्का, कैसी अजीब कहानी है यह!"

मैं उसकी बग़ल में बैठ गया, मैंने घोर-गम्भीर सूरत बना ली और ऐसे बोलना शुरू किया मानो लिखा हुआ पढ़कर सुना रहा हूं—

"नास्तेन्का, पीटर्सबर्ग में, शायद आप उन्हें न जानती हों, काफ़ी अजीब-से कोने हैं। इन जगहों पर मानो वह सूरज नहीं चमकता जो पीटर्सबर्ग के अन्य सभी लोगों के लिये चमकता है। वहां तो कोई दूसरा, नया ही सूरज चमका करता है जो मानो इन कोनों के लिये ख़ास तौर पर आर्डर देकर बनवाया गया है और उसकी रोशनी भी दूसरी ही, ख़ास किस्म की होती है। प्यारी नास्तेन्का, इन कोनों में मानो बिल्कुल दूसरी ही क़िस्म की जिन्दगी है, उससे एकदम भिन्न, जो हमारे आसपास रेल-पेल कर रही है। ऐसी जिन्दगी, जो किसी काल्पनिक अनदेखे-अनजाने राज्य में हो सकती है, मगर हमारी दुनिया में, हमारे गम्भीर, अति गम्भीर समय में नहीं हो सकती। यही जिन्दगी तो कोरी कल्पना, अत्यधिक आदर्श और साथ ही, (ओह, नास्तेन्का!) बेहद घटियापन की तो चर्चा ही क्या की जाये, बेरंग नीरसता और साधारणता की अजीब खिचड़ी-सी है।"

"छी! हे भगवान! कैसी भूमिका है यह! जाने क्या सुनने जा रही हूं मैं?"

"आप सुनेंगी, नास्तेन्का, (लगता है कि मैं नास्तेन्का कहते-कहते कभी नहीं थकूंगा), आप सुनेंगी कि इन कोनों में अजीब-से लोग—स्वप्नदर्शी रहते हैं। स्वप्नदर्शी—अगर उसकी सही-सही परिभाषा आवश्यक हो—तो वह आदमी नहीं, बल्कि नपुंसक लिंग का एक जन्तु होता है। वह अक्सर किसी अगम्य कोने में रहता है, मानो दिन की रोशनी से भी छिपता हो। एकबार वहां घुसने पर वह घोंघे की तरह अपने खोल में ही छिपा रहता है या फिर इस दृष्टि से वह कम से कम उस विख्यात जन्तु

से बहुत मिलता-जुलता है, जो जन्तु भी होता है और घर भी और जिसे कछुआ कहते हैं। क्या ख़याल है आपका, क्यों वह अपनी चारदीवारी को, जो अवश्य ही हरे रंग की कालिख पुती, भोंडी और सिगरेट के धुएं से बुरी तरह भरी होती है, प्यार करता है? इस अजीब महाशय के इने-गिने परिचितों में से (अन्त में उसका कोई परिचित भी नहीं रहता) जब कोई उससे मिलने आता है तो क्यों परेशानी से उसके चेहरे का रंग उड़ जाता है, क्यों वह ऐसे घबराकर उससे मिलता है मानो उसने अपनी चारदीवारी में अभी-अभी कोई अपराध किया हो, मानो जाली नोट बनाये हों या वह कविता रची हो जिसे बेनाम ख़त के साथ किसी पत्रिका को भेजनेवाला हो और ख़त में यह कहा गया हो कि कवि की तो मृत्यु हो चुकी है, किन्तु मैं, उसका मित्र, उसकी कविता को छपवाना अपना पावन कर्तव्य मानता हूं? बताइये तो, नास्तेन्का, क्यों इन दोनों के बीच ढंग से बातचीत नहीं हो पाती? अचानक आने और उलझन में पड़ जानेवाला यह मित्र हंसता क्यों नहीं, कोई फब्ती क्यों नहीं कसता, जब कि दूसरे वातावरण में हंसना, चुटकियां लेना, सुन्दरियों और अन्य दिलचस्प विषयों की चर्चा करना उसे बहुत पसन्द है? आख़िर क्यों यह दोस्त, जो सम्भवतः कुछ ही समय पहले का परिचित है, क्यों पहली बार यहां आने पर ही – क्योंकि ऐसी स्थिति में दूसरी बार वह कभी आयेगा ही नहीं – अपने मेज़बान के चेहरे पर परेशानी का भाव देखकर, ख़ुद यह दोस्त ही क्यों परेशान उठा है, अपनी तमाम हाज़िरदिमाग़ी के बावजूद (अगर उसमें वह है) क्यों, उसकी ज़बान को काठ मार गया है? दूसरी तरफ़ ख़ुद मेज़बान भी बातचीत को सिलसिलेवार और चटपटी बनाने, यह दिखाने की ज़ोरदार, मगर नाकाम कोशिश के बाद कि वह भी सभा-सोसाइटी के तौर-तरीक़े जानता है, कि उसे भी सुन्दरियों की चर्चा पसन्द है, क्यों बिल्कुल हतप्रभ-सा हो गया है और जो केवल आदरभाव दिखाते हुए ही अपने यहां भूलकर आ जानेवाले इस भले आदमी को ख़ुश करने की कोशिश करता है? आख़िर क्यों यह मेहमान अचानक कोई बहुत ही ज़रूरी, किन्तु वास्तव में अस्तित्वहीन काम याद करके अपना टोप झपट लेता है और अपने मेज़बान द्वारा कसकर पकड़े हुए हाथों को, जो इस तरह अपना अफ़सोस ज़ाहिर करता है और स्थिति को सुधारना चाहता है, जैसे-तैसे छुड़ाकर बाहर भागने की कोशिश करता है? क्यों यह दोस्त दरवाज़े से बाहर आते ही

ठहाका मार कर हंसता है और इसी क्षण यह क़सम खाता है कि फिर कभी इस अजीब आदमी के पास नहीं आयेगा, यद्यपि यह अजीब आदमी दरअसल है बहुत ही प्यारा? पर साथ ही वह अपनी कल्पना को थोड़ी-सी उड़ान भरने यानी बातचीत के सारे समय के दौरान मेज़बान की जैसी सूरत थी, उसकी उस दुःखी बिल्ली के बच्चे के साथ तुलना करने से नहीं रोक सकता, जिसे बच्चों ने छल-कपट से पकड़कर ख़ूब सताया, डराया और मारा-पीटा है और जो बेहद परेशान होकर उनसे बचने के लिये कुर्सी के नीचे अंधेरे में जा छिपा है तथा वहां रोंगटे खड़े किये तथा फूं-फां करते हुए घण्टे भर तक दोनों पंजों से अपने छोटे-से दुःखी चेहरे को सहलाने-संवारने को विवश होता और फिर अर्से तक प्रकृति और दुनिया, यहां तक कि उन टुकड़ों को भी, जिन्हें दयालु नौकरानी स्वामी की जूठन से उसके लिये बचा रखती है, शत्रुतापूर्वक देखता है?"

"सुनिये तो," नास्तेन्का ने, जो अभी तक हैरानी से आंखें फाड़े और मुंह बाये मेरी बातें सुनती रही थी, मुझे टोका। "सुनिये तो, मैं बिल्कुल यह नहीं जानती कि यह सब क्यों हुआ और किसलिये आप मुझसे ऐसे अजीब-अजीब प्रश्न पूछ रहे हैं। मगर शायद जो मैं जानती हूं, वह यह है कि शुरू से अन्त तक ये सभी घटनायें आपके साथ घटी हैं।"

"निश्चय ही," मैंने बहुत गम्भीर मुद्रा बनाकर उत्तर दिया।

"अगर ऐसा ही है तो कहते जाइये," नास्तेन्का बोली, "क्योंकि मैं इसका अन्त जानने को बहुत उत्सुक हूं।"

"आप यह जानना चाहती हैं, नास्तेन्का, कि हमारा नायक, या फिर यह कहना बेहतर होगा कि मैं, क्योंकि इन सभी घटनाओं का नायक मैं ख़ुद, मेरा साधारण-सा व्यक्तित्व ही था, अपने उस कोने में ऐसा क्या कर रहा था? आप यह जानना चाहती हैं कि अपने मित्र के अप्रत्याशित आगमन से मैं ऐसे बेहद परेशान क्यों उठा और दिन-भर को अपना सन्तुलन क्यों खो बैठा? आप यह जानना चाहती हैं कि जब मेरे कमरे का दरवाज़ा खुला तो मैं ऐसे चौंक क्यों पड़ा, ऐसे झेंप क्यों गया, अपने मेहमान का स्वागत क्यों नहीं कर पाया और अपने आतिथ्यसत्कार के बोझ तले ही ऐसे लज्जापूर्ण ढंग से दब क्यों गया?"

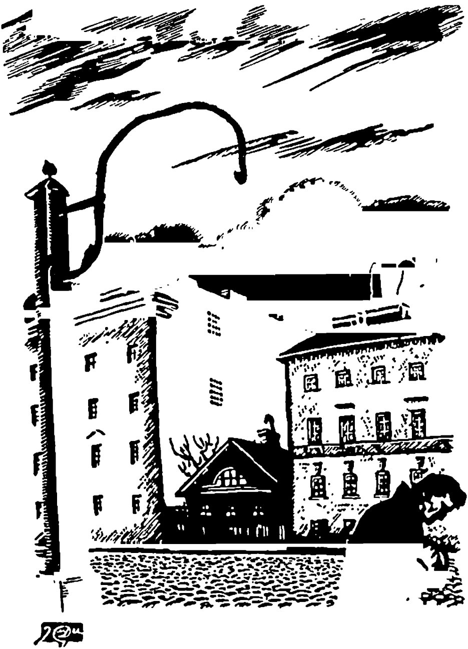
"हां, हां!" नास्तेन्का ने उत्तर दिया, "मैं यही जानना चाहती हूं। सुनिये, आप बहुत ही बढ़िया ढंग से यह सब सुना रहे हैं, मगर क्या कुछ

कम बढ़िया ढंग से ऐसा करना मुमकिन नहीं? आप तो ऐसे बोलते हैं मानो किताब पढ़कर सुना रहे हो।"

"नास्तेन्का!" अपनी आवाज को रोबीली और कठोर बनाते और बड़ी मुश्किल से हंसी रोकते हुए मैंने कहा, "प्यारी नास्तेन्का, मैं जानता हूं कि मैं बहुत बढ़िया ढंग से अपनी कहानी कहता हूं, मगर अफ़सोस है कि दूसरा ढंग जानता ही नहीं। इस वक़्त, प्यारी नास्तेन्का, इस वक़्त मैं अपने को बादशाह सोलोमोन की उस रूह के समान अनुभव कर रहा हूं जिसे हजार साल तक सात ताले लगाकर घड़े में बन्द रखा गया है और आख़िर जिसके ये सातों ताले खोल दिये गये हैं। अब, प्यारी नास्तेन्का, जब हम इतनी लम्बी जुदाई के बाद फिर से मिले हैं—क्योंकि मैं आपको बहुत अर्से से जानता था, नास्तेन्का, क्योंकि मैं बहुत अर्से से किसी की खोज में था और यह इस बात का संकेत है कि मैं आप ही को खोज रहा था और यह कि अब हमें मिलना ही था—तो अब मेरे मस्तिष्क में हजारों द्वार खुल गये हैं और मैं शब्दों की नदी बहाने के लिये मजबूर हूं वरना मेरा दम घुट जायेगा। इसलिये मैं आप से अनुरोध करता हूं, नास्तेन्का, कि मुझे रोके-टोके बिना चुपचाप और ध्यान से मेरी बातें सुनती जाइये, नहीं तो मैं चुप हो जाऊंगा।"

"नहीं, नहीं! हरगिज नहीं! कहते जाइये! मैं अब एक भी शब्द जबान से नहीं निकालूंगी।"

"तो मैं अपनी बात जारी रखता हूं। मेरी दोस्त नास्तेन्का, मेरे दिन में एक ऐसा घण्टा है, जिसे मैं बहुत प्यार करता हूं। यह वही घण्टा है जब सब लोगों के लगभग सभी काम-काज, सभी जिम्मेदारियां और कर्तव्य ख़त्म हो जाते हैं और सभी खाना खाने तथा कुछ देर आराम करने के लिये जल्दी-जल्दी घर की तरफ़ कदम बढ़ाते हैं और रास्ते में ही शाम, रात तथा फ़ुरसत के बाकी वक़्त के लिये दिलचस्प योजनायें बनाते हैं। इसी वक़्त हमारा नायक— नास्तेन्का, कृपया मुझे तृतीय पुरुष में ही अपनी कहानी कहने की अनुमति दीजिये, क्योंकि प्रथम पुरुष में इसे सुनाते हुए मुझे बेहद शर्म आयेगी—तो इसी समय हमारा नायक भी, जो दिन-भर निठल्ला नहीं रहा है, औरों के साथ-साथ चल रहा है। मगर उसका पीला, कुछ-कुछ मुरझाया चेहरा, ख़ुशी के एक अजीब-से भाव से चमक रहा है। वह पीटर्सबर्ग के ठण्डे आकाश में डूबते सूर्य की लालिमा को



भी उदासीनता से नहीं देखता है। जब मैं कहता हूं कि देखता है, तो झूठ बोलता हूं। वह देखता नहीं, बल्कि खोया-खोया-सा किसी बात का चिन्तन करता है, मानो थका हुआ और साथ ही किसी दूसरे, अधिक दिलचस्प विषय में डूबा हुआ है और इसलिये अपने इर्दगिर्द की दुनिया पर लगभग अनिच्छापूर्वक एक उड़ती-सी नज़र ही डाल सकता है। वह ख़ुश है, क्योंकि कल तक के लिये उसके यातनापूर्ण धन्धे ख़त्म हो गये हैं। वह ख़ुश है उस स्कूली बालक की तरह जिसे अपने मनपसन्द खेल खेलने और मौज मनाने की छुट्टी दे दी गयी है। कनखियों से उस पर नजर डालिये तो, नास्तेन्का, आप फ़ौरन देखेंगी कि ख़ुशी के भाव ने उसकी कमज़ोर स्नायुओं और रोगग्रस्त, झल्लायी हुई कल्पना को प्रभावित भी कर दिया है। लीजिये, वह सोच में डूब गया... आप का ख़याल है कि खाने के बारे में? आज की शाम के बारे में? वह किसे इस तरह ताक रहा है? इस ठाठदार श्रीमान को जिसने अपने पास से गुज़रनेवाली तेज घोड़ों की बढ़िया बग्घी में बैठी महिला को बड़े अन्दाज से सिर झुकाया है? नहीं, नास्तेन्का, उसके लिये अब इन छोटी-मोटी बातों का क्या महत्त्व है! वह तो अब अपने विशेष जीवन के धन से ही धनी है। वह तो अचानक ही धनी हो गया है। डूबते सूरज की अन्तिम किरण ऐसे ही तो ख़ुशी के साथ उसके सामने नहीं चमकी थी, ऐसे ही तो उसने उसके हृदय को नहीं गर्माया और उस पर ढेरों छापें नहीं छोड़ी थीं। अब उस सड़क की तरफ़ उसका ध्यान ही नहीं जा रहा है जिस पर पहले बहुत ही मामूली-सी चीज़ उसे आश्चर्यचकित कर सकती थी। अब "कल्पना की देवी" ने (प्यारी नास्तेन्का, अगर आपने जुकोव्स्की को पढ़ा है) जादुई हाथ से सुनहरा ताना तान दिया है और वह उसके सामने अभूतपूर्व और अद्भुत दुनिया के नमूने बनाने लगी है। कौन जाने कि अपने जादुई हाथ से उसने उसे ग्रेनाइट की उस शानदार पटरी से, जिस पर वह घर की ओर जा रहा है, सातवें बिल्लौरी आकाश में पहुंचा दिया है। अब उसे रोककर अचानक उससे यह पूछिये तो कि इस वक़्त वह कहां खड़ा है और किन गलियों-सड़कों से गुज़र कर आया है? उसे सम्भवतः कुछ भी याद नहीं होगा, न तो यह कि कहां से गुज़र कर आया है और न यह ही कि अब कहां खड़ा है और परेशानी से झेंपता हुआ वह स्थिति को सम्भालने के लिये अवश्य ही कुछ झूठ बोल देगा। इसीलिये तो जब एक बहुत ही

मद्र बूढ़ा ने उसे पटरी के बीच ही रोककर बड़े आदर से रास्ता बताने को कहा तो वह सिर से पांव तक कांप उठा, चीख़ता-चीख़ता ही रह गया और उसने घबराकर अपने इर्दगिर्द नज़र दौड़ाई। झल्लाहट से माथे पर बल डाले हुए वह उन राहगीरों की ओर, जो उसे देखकर मुस्कराते हैं और मुड़-मुड़कर उसे देखते हैं या उस बालिका की ओर भी ध्यान दिये बिना आगे चलता जाता है, जो डरकर उसके रास्ते से हट जाती है और फिर आंखें फाड़-फाड़कर उसकी ध्यानमग्न खिली मुस्कान तथा हिलते-डुलते हाथों के इशारे देखकर ज़ोर से हंस पड़ती है। मगर वही कल्पना की देवी उस वृद्धा, उन जिज्ञासु राहगीरों, उस हंसती हुई बालिका और उन देहकान-नाविकों को भी, जो फ़ोन्तान्का नदी पर अपने बजरों का बांध-सा बनाये हुए शाम का खाना खा रहे हैं (मान लीजिये कि हमारा नायक इस वक़्त यहां से गुज़र रहा है), अपनी चंचल उड़ान में अपने साथ उड़ा ले जाती है और सभी को तथा हर चीज़ को उसी तरह अपने सुन्दर ताने-बाने में बुन देती है, जैसे मक्खियां मकड़ी के जाले में बुनी जाती हैं। यह अजीब आदमी इस नई दौलत के साथ हीं अपनी सुखद मांद में प्रवेश करता है, खाना खाने बैठता है, कभी का खाना ख़त्म कर चुका है और केवल तभी चौंकता है, जब सोच में डूबी और सदा उदास रहनेवाली उसकी नौकरानी मात्र्योना मेज़ साफ़ करने के बाद उसे पाइप देती है। वह चौंकता है और हैरान होकर यह याद करता है कि खाना पूरी तरह ख़त्म कर चुका है और उसकी समझ में नहीं आता कि यह कैसे हो गया। कमरे में अंधेरा हो गया है, उसका मन उदास है, सूना-सूना है; उसके इर्दगिर्द कल्पना का एक पूरा साम्राज्य किसी तरह की आवाज़ के बिना तहस-नहस हो गया है, उसका नाम-निशान भी बाक़ी नहीं रहा, वह एक सपने की तरह ग़ायब हो गया है और उसे ख़ुद भी यह याद नहीं रहा कि वह क्या कुछ देखता रहा है। मगर उसे कोई अस्पष्ट-सी अनुभूति हो रही है जिससे दिल में हल्की धड़कन और बेचैनी हो रही है, कोई नई चाह उसकी कल्पना को फुसलाती हुई गुदगुदा और उत्तेजित कर रही है, जो अनजाने ही ढेरों नई छायाओं को उभारती है। छोटे-से कमरे में गहरी ख़ामोशी छाई है, एकान्त और काहिली की धूप में कल्पना मज़े ले रही है; उसमें गर्मी आती है और वह बाल के रसोईघर में पूरी तरह निश्चिन्त और कॉफ़ी बनाने में मस्त बूढ़ी मात्र्योना की केतली के पानी की तरह उबलने

लगती है। लीजिये, अब उसकी कल्पना शोलों के रूप में भड़कने लगी है, लीजिये, उद्देश्य के बिना और ऐसे ही उठा ली गयी किताब भी, जिसके दो से अधिक पृष्ठ नहीं पढ़े गये, मेरे स्वप्नदर्शी के हाथ से नीचे गिर गयी है। उसकी कल्पना फिर से रंग में आ गयी है, फिर से उत्तेजित हो उठी है और फिर से एक नई दुनिया, एक नई अद्भुत जिन्दगी अपनी सारी सम्भावनाओं के साथ जगमगाते रूप में उसके सामने चमक उठी है। नया सपना – नया सुख! सूक्ष्म और इन्द्रियगत विष का एक और घूंट! ओह, उसके लिये क्या महत्त्व है हमारे वास्तविक जीवन का! उसकी अनूठी नजर में, नास्तेन्का, हम तो बहुत ही सुस्त, धीमी और मुरझायी जिन्दगी बिताते हैं; उसकी नजर में तो हम सभी अपने भाग्य से बेहद असन्तुष्ट हैं, हमारी जिन्दगी हमारे लिये बोझ है! हां, सचमुच पहली नजर में हम एक-दूसरे के प्रति उदासीन, कैसे उदास और मानो नाराज़-से प्रतीत होते हैं..., "बेचारे!" हमारा स्वप्नदर्शी सोचता है। हां, अगर वह ऐसा सोचता है, तो उसमें हैरानी की बात भी क्या है! जरा देखिये तो इन जादुई, इन सजीव चित्रों को जिनके ताने-बाने ये अद्भुत छायायें इतने सुन्दर, इतने सधे, इतने उदार और विस्तृत ढंग से उसके सामने बुनती हैं और जिनमें जाहिर है, कि हमारा स्वप्नदर्शी, अपने विशिष्ट चरित्र के साथ, सबसे आगे-आगे, सबसे प्रमुख होता है। इन विविधतापूर्ण करतबों को देखिये, उसके अन्तहीन ख़ुशीभरे सपनों पर नजर डालिये! आप शायद यह जानना चाहेंगी कि वह किस चीज के सपने देखता है? यह पूछने की जरूरत ही क्या है? सभी चीजों के। कवि बनने के, जिसकी शुरू में अवहेलना हो और बाद में धाक मान ली जाये; होफमान की दोस्ती के, सेन्ट बार्थोलोमिओ की रात के, डिआना वर्नोन के, जार इवान की काज़ान-विजय में वीरतापूर्वक भूमिका अदा करने के, क्लारा मोवरे, एफ़ी डीन्स के, प्रीलेट परिषद के सामने खड़े हुस के, रोबेर्टो में मृतों के पुनर्जन्म के (यह संगीत याद है न? क़ब्रिस्तान की गंध आती है!), मीन्ना और ब्रेंडा के, बेरेज़ीना की लड़ाई के, काउंटेस वी० डी० की बैठक में कविता-पाठ के, दांतोन के, क्लयोपेत्रा और उसके प्रेमियों के, – वह सपने देखता है कोलोमना में छोटे-से घर, उस घर में अपने अलग कोने और जाड़े की रात में अपनी बग़ल में बैठी सुन्दरी के, जो बहुत ध्यान से इसी तरह उसकी बातें सुन रही हो, जैसे, मेरे नन्हे फ़रिश्ते, इस वक़्त आप मुझे

सुन रही हूं! नहीं, नास्तेन्का, उस इन्द्रिय-विलासी के लिये उस जीवन का क्या महत्त्व है जिसके हम इतने इच्छुक हैं? यह सोचता है कि यह बहुत ही घटिया, दयनीय जीवन है और इस बात को नहीं भांपता है कि कभी उसके लिये भी दुःख की घड़ी आ सकती है, जब वह इस दयनीय जीवन के एक दिन के लिए अपनी कल्पना के सभी वर्ष दे देगा और सो भी ख़ुशी और सुख के लिये नहीं, दुःख, पश्चाताप और शोक के उस क्षण में चुनाव करना भी पसन्द नहीं करेगा। मगर जब तक वह घड़ी, वह भयानक समय नहीं आता, उसे किसी चीज़ की इच्छा नहीं, क्योंकि वह इच्छा-मुक्त है, क्योंकि उसके पास सब कुछ है, क्योंकि वह सन्तुष्ट है, क्योंकि वह अपने जीवन का स्वयं स्रष्टा है और अपनी हर नयी तरंग के मुताबिक़ उसे नया रूप देता रहता है। और फिर यह कल्पना का सुन्दर संसार तो ऐसे आसानी और ऐसे स्वाभाविक ढंग से रचा जा सकता है, मानो यह कल्पना-सृष्टि हो ही नहीं! वास्तव में कभी-कभी मैं यह विश्वास करने को तैयार होता हूं कि यह सारा जीवन भावनाओं की उत्तेजना, छलना और कल्पना का धोखा ही नहीं, बल्कि वास्तविक और यथार्थ है, हक़ीक़त है! बताइये तो, नास्तेन्का, क्यों ऐसे क्षणों में आत्मा पर बोझ-सा मालूम होता है? किस तरह, किस जादू, किस अदृश्य शक्ति के प्रभाव से नब्ज़ तेज़ हो जाती है, स्वप्नदर्शी की आंखों से आंसू बहने लगते हैं, उसके पीले, नम गाल तमतमा उठते हैं और उसका रोम-रोम स्वर्गिक सुख से पुलकित हो उठता है? उसकी पूरी-पूरी उनींदी रातें अक्षय आनन्द और ख़ुशी में एक पल की भांति क्यों बीत जाती हैं और जब ऊषा की पहली गुलाबी किरण खिड़की को लांघकर अपने हिचकते-झिझकते अलौकिक प्रकाश से, जैसा कि हमारे पीटर्सबर्ग में होता है, उसके उदास कमरे को रोशन कर देती है, तो हमारा थका-हारा, अत्यधिक क्लान्त स्वप्नदर्शी क्यों बिस्तर पर जा पड़ता है और अपनी रुग्न, कमज़ोरी हुई आत्मा के परमानन्द की बेहोशी से अपने दिल में यातनापूर्ण मधुर पीड़ा लिये हुए गहरी नींद सो जाता है? हां, नास्तेन्का, उससे धोखा हो जाता है और अनचाहे ही आदमी यह विश्वास कर लेता है कि वास्तविक और सच्चा अनुराग ही उसकी आत्मा को आलोड़ित करता है, बरबस यह यक़ीन हो जाता है कि उसके अदेह दिवास्वप्नों में कुछ सजीव, कुछ ठोस और मूर्त है! देखिये तो कैसा छल है यह—मिसाल के लिये प्यार ने अपनी

ग्रसीम ख़ुशी और अपनी सभी कष्टप्रद यातनाओं के साथ उसके हृदय में प्रवेश किया... उस पर एक नज़र डालते ही आपको इस बात का यक़ीन हो जायेगा! मगर उसे देखते हुए प्यारी नास्तेन्का, आप यह विश्वास करती हैं या नहीं कि जिसे अपने उन्मादी सपनों में वह इतना अधिक प्यार करता रहा है, उसे वास्तव में उसने कभी जाना ही नहीं? क्या वह बहकाने-फुसलानेवाली छायायें ही देखता रहा है और क्या केवल इस उन्माद के ही उसे सपने आते रहे हैं? क्या वास्तव में ही उन दोनों ने एक-दूसरे की बांह थामे, सारी दुनिया को भूलकर अपनी दुनिया और अपनी ज़िन्दगी को एक-दूसरे के साथ जोड़कर अपने जीवन के अनेक वर्ष साथ-साथ नहीं विताये? जुदाई की घड़ी आने पर क्या वही रात को बहुत देर से कठोर आकाश के नीचे उठते तूफ़ान और तेज़ झंझा पर कान दिये बिना, जो उसकी काली बरौनियों से अश्रुकण उड़ा ले जाती थी, उसकी छाती पर पड़ी हुई सिसकती तथा छटपटाती नहीं रही थी? क्या यह सब कल्पना ही थी– वह उपेक्षित, अस्त-व्यस्त और उदास-उदास बाग भी, जिसकी पगडण्डियों पर काई जमी हुई थी, जो सूना-सूना और अवसादपूर्ण था और जहां वे दोनों अक्सर टहलते थे, आशायें संजोते थे, व्यथित होते थे, प्यार करते थे, इतने अधिक समय तक और अत्यधिक भावना-विभोर होकर प्यार करते रहे थे! और वह अजीब-सा दादों-परदादों का पुराना मकान, जिसमें उसने अपने बूढ़े, कठोर, सदा गुमसुम और चिड़चिड़े पति के साथ एकान्त और उदासी में इतना समय बिताया; उस पति के साथ, जो उन्हें–दो भीरु बालकों को–डराया करता था और वे दोनों दुःखी तथा डरते हुए एक-दूसरे से अपना प्यार छिपाया करते थे? कैसी यातनायें सहते रहे थे, ऐसे भयभीत रहे थे वे, कितना भोला और स्वच्छ था उनका प्यार और (सो तो स्पष्ट ही है) कितने क्रुद्ध थे लोग! और हे भगवान, बाद में अपने देश से दूर, गर्म, अजनबी आकाश के नीचे, सुन्दर शाश्वत नगर में, समारोही जगमग और संगीत के धूम-धड़ाके में, प्रकाश के सागर में डूबे हुए महल (उसका महल होना अनिवार्य था) के छज्जे में जिसके चारों ओर गुलाब और सफ़ेद मेंहदी के फूल खिले हुए थे, क्या फिर उसी से उसकी मुलाक़ात नहीं हुई थी? उसे पहचानते ही क्या उसने झटपट अपना नक़ाब नहीं उतारा था और यह फुसफुसाकर कि "मैं आज़ाद हूं," सिहरी और उसकी बाहों में नहीं चली गयी थी? तब ख़ुशी से

चोड़कर और एक दूसरे को बाहों में कसे हुए वे दोनों घड़ी-भर में ही क्या अपना दुःख-दर्द, अपनी जुदाई, अपनी सारी यातना, उस उदास घर, उस बूढ़े, दूरस्थ मातृभूमि के उस सूने बाग़ और उस बेंच को नहीं भूल गये थे, जहां हताशापूर्ण व्यथा से निर्जीव-सी होकर वह अन्तिम, ज़ोरदार चुम्बन के बाद उसकी बाहों से निकल गयी थी? ... ओह, नास्तेन्का, आपको यह तो मानना ही होगा कि अगर कोई लम्बा-तड़ंगा, हट्टा-कट्टा, ख़ुशमिज़ाज और विनोदी नौजवान, आपका बिन बुलाया दोस्त, अचानक आकर दरवाज़ा खोल दे और ऐसे चिल्लाकर, मानो कुछ हुआ ही न हो, यह कहे कि "मेरे भाई, मैं अभी-अभी पाव्लोव्स्क से आया हूं!" तो आप उस स्कूली बालक की तरह ही चौंक उठेंगी, झेंप जायेंगी और शर्म से आपका मुंह लाल हो जायेगा, जिसने पड़ोस के बाग़ से चुराया हुआ सेब अभी-अभी जेब में डाला हो! हे भगवान! बूढ़ा काउंट मर गया, वर्णनातीत सौभाग्य का क्षण शुरू हो रहा है, और यहां पाव्लोव्स्क से लोग चले आ रहे हैं!"

अपनी आवेशपूर्ण बातों को ख़त्म करते हुए मैं आवेश में ही चुप हो गया। मुझे याद है कि किसी न किसी तरह ठहाका मारने को मेरा कितना अधिक मन हुआ था। कारण कि मैं अनुभव करने लगा था कि कोई छोटा-सा शत्रुतापूर्ण शैतान मेरे भीतर हिलने-डुलने लगा है, कि मेरा कण्ठ रुंधने, मेरी ठोड़ी हिलने और आंखें अधिकाधिक नम होने लगी हैं... मुझे आशा थी कि नास्तेन्का, जो अपनी समझदार आंखें फैलाये हुए मेरी बातें सुनती रही थी, अपनी अदम्य बाल सुलभ हंसी का ज़ोरदार फ़व्वारा छोड़ देगी। इसलिये मुझे इस बात का अफ़सोस भी होने लगा था कि ऐसे ही इतनी दूर तक बहकता चला गया, बेकार ही उससे वह सब कुछ कह डाला, जो एक ज़माने से मेरे दिल में उमड़ता-घुमड़ता रहा था और जिसे मैं ऐसे सुना सकता था मानो लिख रखा हो। कारण कि अपने को मैं ख़ुद ही एक ज़माने पहले सज़ा सुना चुका था और अब उसे पढ़कर सुनाने का मोह नहीं छोड़ सका, यद्यपि यह सच है कि मुझे समझ लिया जायेगा, इसकी उम्मीद मैंने नहीं की थी। किन्तु मुझे इस बात से बड़ी हैरानी हुई कि वह ख़ामोश रही, कुछ क्षण बाद उसने धीरे-से मेरा हाथ दबाया और सहमी-सी सहानुभूति के साथ पूछा—

"क्या सचमुच ही आपने इसी तरह अपनी सारी ज़िन्दगी बितायी है?"

"हां, सारी जिन्दगी, नास्तेन्का, सारी जिन्दगी," मैंने जवाब दिया। "लगता है कि ऐसे ही इसका अन्त होगा।"

"नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिये," उसने परेशान होते हुए कहा, "ऐसा नहीं होगा: नहीं तो शायद मुझे जिन्दगी भर नानी की बगल में ही बैठे रहना पड़ेगा। सुनिये, आप यह जानते हैं न कि ऐसे जीना बिल्कुल अच्छी बात नहीं है?"

"जानता हूं, नास्तेन्का, जानता हूं!" अपनी भावनाओं को और अधिक वश में न रख पाकर मैं चिल्ला उठा। "अब मैं पहले-से कहीं अधिक अच्छी तरह यह जानता हूं कि अपने सब से अच्छे सभी वर्ष मैंने योंही गंवा दिये। अब मैं यह जानता हूं और इस बात की चेतना से मुझे और भी अधिक पीड़ा होती है कि स्वयं भगवान ने आपको, मेरे दयालु फ़रिश्ते को, मुझे यह बताने और इसका सबूत देने के लिये मेरे पास भेजा है। अब, जबकि मैं आपके पास बैठा हुआ आप से बातचीत कर रहा हूं मुझे भविष्य का ख़याल करके ही डर महसूस होता है, क्योंकि भविष्य में फिर एकाकीपन होगा, फिर वही निस्सार, खोखला जीवन होगा मेरा। जब आपके पास बैठे हुए यथार्थ में ही मैं इतना सौभाग्यशाली हो सका हूं तो अब कल्पना भी किस चीज़ की करूंगा! ओ, प्यारी लड़की, भगवान आपका भला करे कि आपने शुरू में ही मुझे नहीं खदेड़ दिया, कि अब मैं यह कह सकता हूं कि अपने जीवन में मैं कम से कम दो शामें तो जिया हूं!"

"ओह, नहीं, नहीं!" नास्तेन्का चिल्ला उठी और उसकी आंखों में आंसू चमक उठे। "अब आगे ऐसा नहीं होगा। हम ऐसे जुदा नहीं होंगे! दो शामें भला क्या होती हैं!"

"ओह, नास्तेन्का, नास्तेन्का! जानती हैं कि अब कितने अर्से के लिये आपने ख़ुद अपने से ही मेरी सुलह करा दी है? जानती हैं कि अब मैं अपने बारे में ही इतना अधिक बुरा नहीं सोचूंगा, जितना कि कभी-कभी सोचता था? जानती हैं कि शायद अब मैं इस बात से दुःखी नहीं हुआ करूंगा कि अपने जीवन में अपराध और पाप करता रहा हूं, क्योंकि ऐसी जिन्दगी अपराध और पाप ही तो है? यह भी नहीं सोचियेगा कि मैंने कुछ बढ़ा-चढ़ाकर आप से अपनी बातें कही हैं। भगवान के लिये ऐसा नहीं सोचियेगा, नास्तेन्का, क्योंकि मेरे जीवन में कभी-कभी अवसाद के ऐसे

क्षण आते हैं... क्योंकि इन क्षणों में मुझे ऐसा लगने लगता है कि मैं कभी वास्तविक जीवन आरम्भ कर ही नहीं सकूंगा, क्योंकि मुझे प्रतीत होता है कि मैं वास्तविक और यथार्थ जीवन की लय-ताल, उसकी अनुभूति से वंचित हो चुका हूं, क्योंकि मैं ख़ुद अपने लिये अभिशाप बन चुका हूं, क्योंकि अब मेरे जीवन में सपनों की रात के बाद चिन्तन के क्षण आते हैं, जो भयानक होते हैं! साथ ही इसी समय ज़िन्दगी के चक्कर में लोगों की भीड़ दौड़-धूप करती दिखाई देती है, उसका शोर सुनाई देता है, यह नज़र आता है कि कैसे लोग वास्तविक जीवन बिताते हैं, यह देखने को मिलता है कि उनकी ज़िन्दगी भरी-पूरी है, कि उनकी ज़िन्दगी सपने, या छाया की तरह झलक दिखाकर ग़ायब नहीं हो जायेगी, कि उनका जीवन नित नया रूप धारण करता है, वह सदा जवान रहता है और उनके जीवन का हर क्षण दूसरे से भिन्न होता है। दूसरी ओर भीरु कल्पना कितनी नीरस और ऊब की चरम सीमा तक एकरूपी है। वह छाया की, विचार की दासी है, वह उस पहले बादल की दासी है जो अचानक सूरज को ढक देता है और हर सच्चे पीटर्सबर्गी के दिल को, जो अपने सूरज को इतना महत्त्व देता है, खिन्न कर देता है, और खिन्नता में कल्पना ही भला क्या हो सकती है! ऐसा लगता है कि स्थायी तनाव के परिणामस्वरूप यह अ सी म कल्पना भी आख़िरकार थक-हारकर चुक जायेगी, क्योंकि हम अधिकाधिक प्रौढ़ होते जाते हैं, पुराने आदर्शों के चौखटे से बाहर निकल जाते हैं, वे टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, धूल में मिल जाते हैं। अगर कोई दूसरा जीवन नहीं है, तो इन्हीं टुकड़ों को जोड़कर उसे फिर से बनाना पड़ता है। मगर हमारी आत्मा कुछ दूसरा चाहती है, किसी और चीज़ की मांग करती है। स्वप्नदर्शी बेकार ही अपने पुराने सपनों की राख में किसी चिनगारी की खोज करता है ताकि उसे सुलगा सके, फिर से सुलगायी आग से सर्द हुए दिल को गर्मा सके, उसमें फिर से उस सब कुछ को ज़िन्दा कर सके जो पहले इतना प्रिय था, मर्मस्पर्शी था, जिससे ख़ून गर्म हो उठता था, आंखों में आंसू छलक आते थे और जो इतने शानदार ढंग से उसकी आंखों में धूल झोंक देता था। जानती हो, नास्तेन्का, मैं कहां तक जा पहुंचा हूं? जानती हो, नास्तेन्का, कि मैं अब अपनी भावनाओं की, उस चीज़ की वर्षगांठ मनाने के लिये मजबूर हो रहा हूं, जो पहले इतनी प्रिय थी, जो वास्तव में कभी थी ही नहीं।

यह वर्षगांठ भी उन्हीं मूर्खतापूर्ण और ग्रमूर्त सपनों के उपलक्ष्य में ही मनायी जायेगी और मनानी यह इसलिये होगी कि अब वे मूर्खतापूर्ण सपने भी तो नहीं रहे, क्योंकि उनके जीने का कोई सहारा नहीं रहा—आखिर सपनों को भी तो जिया जाता है। जानती हूं कि अब मुझे कुछ खास वक़्तों पर उन जगहों को याद करना और वहां जाना बहुत अच्छा लगता है, जहां कभी अपने ही ढंग से मुझे सुखानुभूति हुई थी! मुझे उसी अतीत के आधार पर, जिसे कभी लौटाया नहीं जा सकता, वर्तमान के सुख का निर्माण करना बहुत प्रिय है और इसीलिये मैं अक्सर किसी आवश्यकता और उद्देश्य के बिना छाया की भांति, उदास और खोया-सा, पीटर्सबर्ग के गलियों-कूचों में घूमा करता हूं। कैसी हैं ये सब स्मृतियां! मिसाल के तौर पर याद आता है कि पूरे एक साल पहले इसी जगह, इसी वक्त, इसी घड़ी, इसी पटरी पर, ऐसे ही, जैसे कि इस समय, एकाकी और उदास-सा घूमता रहा था! याद आता है कि सपने तब भी उदास थे और यद्यपि अब की तुलना में पहले भी कुछ भी बेहतर नहीं था, फिर भी ऐसा अनुभव होता है मानो जीवन अधिक आसान और अधिक चैन का था, कि तब यह उल्टा-सीधा विचार दिमाग़ में नहीं था, जो अब मेरे साथ चिपक गया है, कि आत्मा की यह फटकार, ये अवसादपूर्ण और कटु पश्चाताप नहीं थे जो अब न दिन को, न रात को ही मुझे चैन लेने देते हैं। खुद अपने से सवाल करता हूं—कहां हैं अब वे तेरे सपने? और सिर हिलाकर कहता हूं—कितनी तेज़ी से साल उड़ जाते हैं! फिर अपने से पूछता हूं—अपने सालों का तुमने क्या किया? कहां दफना दिया तुमने अपना अच्छा वक़्त? तुम जिये या नहीं? तब अपने आप से कहता हूं—देखो तो दुनिया में कितनी बेदर्दी होती जा रही है। कुछ और साल बीतेंगे और उनके बाद कटु एकाकीपन आयेगा, लाठी के सहारे हिचकोले खाता हुआ बुढ़ापा आयेगा और उसके पीछे आयेगी उदासी और ऊब। तुम्हारी सपनों की दुनिया बेरंग हो जायेगी, सपने मुरझा जायेंगे और पीले पत्तों की तरह वृक्षों से झड़ जायेंगे... ओ, नास्तेन्का! एकाकी, एकदम एकाकी रहने से दुःख होगा, यहां तक कि पश्चाताप करने के लिये भी कुछ नहीं होगा—कुछ भी, कुछ भी तो नहीं... क्योंकि मैंने जो खोया है, वह सब कुछ भी तो नहीं था, पागलपन था, एकदम शून्य था, वे तो केवल सपने थे!"

"बस, बस, मुझे अब और अधिक द्रवित नहीं कीजिये!" आंसू

पोंछते हुए नास्तेन्का ने कहा। "अब यह सब नहीं होगा! अब हम दोनों एकसाथ होंगे। मेरे साथ अब चाहे कुछ भी क्यों न हो, हम कभी अलग नहीं होंगे। सुनिये, मैं साधारण लड़की हूं, बहुत कम पढ़ी-लिखी हूं, यद्यपि नानी ने मेरे लिये अध्यापक भी रखा था। मगर वास्तव में ही मैं आपको अच्छी तरह समझती हूं, क्योंकि जो कुछ आपने बताया है, उस सब को मुझे उन दिनों अनुभूति हो चुकी है, जब नानी ने पिन लगाकर अपने और मेरे फ़्राक को जोड़ लिया था। ज़ाहिर है कि मैं यह सब कुछ आपकी तरह सुन्दर ढंग से बयान न कर पाती, मैं तो पढ़ी-लिखी नहीं हूं," लड़की ने झेंपते हुए इतना और जोड़ दिया, क्योंकि मेरी करुणाजनक बातों और ऊंची शैली के प्रति यह अभी भी आदरभाव अनुभव कर रही थी, "मगर बहुत ख़ुश हूं कि आपने पूरी तरह अपना दिल खोलकर मेरे सामने रख दिया है। अब मैं आपको जानती हूं, पूरी तरह, सब कुछ जानती हूं। जानते हैं कि मैं भी आपको अपनी कहानी सुनाना चाहती हूं, सो भी दुराव-छिपाव के बिना? उसे सुनने के बाद आप मुझे अपनी सलाह दीजियेगा। आप बहुत समझदार आदमी हैं। अपनी सलाह देने का वचन देते हैं न?"

"आह, नास्तेन्का," मैंने उत्तर दिया, "यह सही है कि मैं सलाहकार, तिस पर समझदार सलाहकार तो कभी नहीं था। पर अब, यह अनुभव कर रहा हूं कि अगर हम दोनों हमेशा इसी तरह एक-दूसरे का साथ देंगे, तो यह बहुत समझदारी की बात होगी और हम में से प्रत्येक दूसरे को बहुत ही अक़्लमन्दी की सलाह दे सकेगा! हां तो, मेरी अच्छी नास्तेन्का, आपको कैसी सलाह की ज़रूरत है? साफ़-साफ़ कहिये – अब मैं इतना ख़ुश, इतना सौभाग्यशाली, इतना साहसी और समझदार हूं कि तुरन्त ही आपको उत्तर दूंगा।"

"नहीं, नहीं!" नास्तेन्का ने हंसते हुए मुझे टोका। "मुझे केवल समझदारी की ही नहीं, बल्कि हार्दिक, एक भाई की सी सलाह, ऐसी सलाह की जरूरत है, जो अगर आप मुझे जीवनभर प्रेम करते रहे होते, तब देते!"

"ठीक है, ठीक है, नास्तेन्का!" मैं ख़ुशी से चिल्ला उठा, "अगर मैंने बीस बरस भी आपको प्यार किया होता, तो वह भी इससे अधिक न होता, जितना अब है!"

"अपना हाथ दीजिये!" नास्तेन्का ने कहा।

"यह लीजिये!" मैंने उत्तर देते हुए अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया।

"तो मेरी कहानी शुरू होती है।"

नास्तेन्का की कहानी

"आधी कहानी तो आप जानते ही हैं यानी आपको यह मालूम है कि मेरी बूढ़ी नानी है..."

"अगर बाकी आधी भी इतनी ही संक्षिप्त है तो..." मैंने हंसते हुए टोका।

"चुप रहिये और सुनते जाइये। सब से पहले तो यह शर्त ज़रूरी है कि आप मुझे टोकेंगे नहीं, वरना मैं सम्भवतः सब कुछ गड़बड़ा दूंगी। तो चुपचाप सुनिये।

"हां, तो मेरी बूढ़ी नानी है। मैं छोटी उम्र में ही उसके पास आ गयी थी, क्योंकि मेरे मां-बाप का देहान्त हो गया था। शायद यह मानना चाहिये कि मेरी नानी पहले कुछ अधिक समृद्ध रही होगी, क्योंकि अब भी अच्छे दिनों को याद करती रहती है। उसी ने मुझे फ़्रांसीसी सिखाई और फिर मेरे लिये अध्यापक रख दिया। जब मैं पन्द्रह साल की हुई (इस वक़्त सत्रह की हूं) तो पढ़ाई ख़त्म हो गयी। इसी वक़्त मैं एक शरारत कर बैठी। वह शरारत क्या थी, यह मैं आपको नहीं बताऊंगी। बस, इतना कह देना ही काफ़ी होगा कि अपराध मामूली-सा था। मगर नानी ने एक सुबह को मुझे अपने पास बुलाकर कहा कि चूंकि वह अंधी है, मुझ पर नज़र नहीं रख सकती, इसलिये उसने सेफ़्टी पिन लेकर मेरा फ़्राक अपने फ़्राक के साथ जोड़ लिया और कहा कि अगर मैं सुधर नहीं जाऊंगी तो हम ज़िन्दगी-भर ऐसे ही बैठी रहेंगी। संक्षेप में यह कि शुरू में तो उसके पास से हटा ही नहीं जा सकता था—काम-काज, पढ़ना-लिखना, सब कुछ नानी के पास बैठे-बैठे ही करना होता था। एक दिन मैंने चालाकी से काम लेते हुए अपनी बहरी नौकरानी फ़्योक्ला को अपनी जगह बैठने को राज़ी कर लिया। फ़्योक्ला मेरी जगह आ बैठी, उसी वक़्त नानी की आंख लग गई और मैं पास ही रहनेवाली अपनी एक सहेली के

यहां चली गई। मगर इसका बुरा ही नतीजा निकला। मेरी अनुपस्थिति में नानी जाग गई और उसने यह समझते हुए कि मैं अपनी जगह पर शान्त बैठी हूं, कुछ पूछा। फ़्योक्ला ने देखा कि नानी कुछ पूछ रही है, मगर उसे सुनाई तो कुछ नहीं दे रहा था। वह सोचती रही, सोचती रही कि क्या करे और आख़िर पिन अलग करके भाग खड़ी हुई..."

नास्तेन्का यहां रुकी और खिलखिलाकर हंसने लगी। मैं भी उसके साथ-साथ हंस पड़ा। उसने फ़ौरन हंसना बन्द कर दिया।

"सुनिये, आप नानी पर नहीं हंसिये। यह तो मैं इसलिये हंस रही हूं कि हंसने की बात है... अगर नानी सचमुच है ही ऐसी, तो हो ही क्या सकता है। फिर भी मैं उसे थोड़ा-सा प्यार तो करती ही हूं। हां, तब मेरी शामत आई। उसी वक़्त मुझे फिर से मेरी जगह पर बिठा दिया गया और हिलना-डुलना तक भी असम्भव हो गया।

"हां, मैं आपको यह बताना तो भूल ही गई कि हमारा, यानी नानी का घर, सिर्फ़ तीन खिड़कियोंवाला है, पूरी तरह लकड़ी का बना हुआ और नानी की तरह ही बहुत बरसों का, पुराना। उसमें ऊपर एक अटारी है। तो एक नया किरायेदार उसमें रहने के लिये आया..."

"इसका मतलब यह हुआ कि उसके पहले भी कोई किरायेदार वहां रहता था?" मैंने ऐसे ही पूछा।

"सो तो जाहिर ही है," नास्तेन्का ने उत्तर दिया, "और वह आपकी तुलना में अधिक चुप रह सकता था। सच तो यह है कि वह बड़ी मुश्किल से जबान हिला पाता था। वह एक दुबला-पतला-सा, गूंगा, अंधा और लंगड़ा बुड्ढा था। आख़िर जब उसके लिये इस दुनिया में और अधिक जीना सम्भव नहीं रहा, तो वह चल बसा। इसके बाद एक नये किरायेदार की जरूरत हुई, क्योंकि इसके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। नानी की पेंशन और किराया—बस, यही हमारी कुल आमदनी है। क़िस्मत का खेल कहिये, नया किरायेदार नौजवान था, स्थानीय नहीं, कहीं बाहर से आया था। चूंकि उसने किराये के मामले में किसी तरह की सौदेबाजी नहीं की, नानी ने उसे ही रख लिया और इसके बाद मुझ से पूछा: 'नास्तेन्का, हमारा नया किरायेदार जवान है क्या?' मैंने झूठ नहीं बोलना चाहा, बोली, 'बिल्कुल जवान तो नहीं, मगर बूढ़ा भी नहीं है।' नानी ने फिर पूछा: 'शक्ल-सूरत अच्छी है क्या?' मैंने फिर

झूठ बोलना पसन्द नहीं किया: 'हां, अच्छी शक्ल-सूरत है, नानी!' नानी बोली: 'आह, यह भी कैसा ग़ज़ब है, ग़ज़ब है! बेटी, मैं तुमसे यह इसलिये कह रही हूं कि तुम उसकी तरफ़ कोई ध्यान न देना। कैसा ज़माना आ गया है! ऐसा मामूली-सा किरायेदार और वह भी अच्छी शक्ल-सूरत वाला है। पहले ज़माने में तो ऐसा नहीं होता था!'

"नानी पुराने ज़माने का ही राग अलापा करती है! यह जवान भी पुराने ज़माने में थी, तब सूरज भी अधिक गर्म होता था और क्रीम भी इतनी जल्दी खट्टी नहीं होती थी–हर चीज़ का पुराने ज़माने से ही सम्बन्ध जुड़ा रहता है! मैं बैठी हुई मन ही मन सोचने लगी–नानी ख़ुद ही तो मेरे दिमाग़ में ऐसे विचार पैदा कर रही है, पूछ रही है कि किरायेदार अच्छी शक्लसूरतवाला है या नहीं, जवान है या नहीं? मगर यह ख़याल घड़ी-भर को यों ही दिमाग़ में आया और मैं उसी क्षण फिर से जुराबें बुनने, उनके फंदे गिनने में व्यस्त हो गई और बाद में यह बात बिल्कुल भूल गई।

"एक दिन किरायेदार सुबह ही यह जानने को आया कि हमने उसके कमरे में काग़ज़ की नयी छींट लगवा देने का जो वादा किया था, वह कब पूरा होगा। नानी तो ठहरी बातूनी, बात में से बात निकलती रही और फिर मुझ से बोली–'नास्तेन्का, जाकर मेरे सोने के कमरे से गिनतारा ले आ।' मैं झटपट उठी, मालूम नहीं किस कारण शर्म से लाल हुई जा रही थी और यह भूल गई कि मेरा फ़्राक नानी के फ़्राक से जुड़ा हुआ है। इसके बजाय कि पिन को धीरे से अलग कर देती ताकि किरायेदार की उसपर नज़र न पड़ती, मैं ऐसे तेज़ी से लपकी कि नानी की आरामकुर्सी भी मेरे साथ-साथ घिसट चली। जैसे ही मैंने यह देखा कि किरायेदार को मेरे बारे में अब सब कुछ मालूम हो गया है, मैं शर्म से लाल हो गई, जहां की तहां बुत बनी खड़ी रह गई और अचानक रो पड़ी। उस क्षण इतनी शर्म आई और इतना बुरा लगा कि काश धरती फट जाती! नानी चिल्लाई– 'तू खड़ी क्यों है, री?' और मैं अधिक ज़ोर से रो पड़ी... किरायेदार ने जैसे ही यह देखा कि मैं उसके कारण शर्म से गड़ी जा रही हूं, वह फ़ौरन सिर झुकाकर वहां से चला गया!

"इसके बाद तो जैसे ही ड्योढ़ी में आहट होती, वैसे ही मेरा दम निकल जाता। मैं सोचती, लो, किरायेदार आ रहा है और सावधानी

बरतते हुए धीरे-से पिन भी खोल लेती। मगर यह आहट उसके पैरों की न होती, वह न आया। दो हफ़्ते बीत गये। तब किरायेदार ने फ़्योक्ला से कहलवा भेजा कि उसके पास फ़्रांसीसी भाषा में बहुत-सी किताबें हैं और सब अच्छी किताबें हैं जिन्हें पढ़ा जा सकता है। उसने जानना चाहा कि क्या नानी यह नहीं चाहेगी कि मैं उन्हें उसे पढ़कर सुना दूं ताकि ऊब महसूस न हो? नानी कृतज्ञतापूर्वक इसके लिये राज़ी हो गई, मगर बराबर मुझसे यह पूछती रही कि किताबें नैतिक हैं या नहीं, क्योंकि अगर वे अनैतिक हैं तो, नास्तेन्का, तुम्हें किसी भी हालत में उन्हें नहीं पढ़ना चाहिये, वे तुम्हें बुरी बातें सिखा देंगी।

"'क्या सिखा देंगी वे, नानी? क्या लिखा है उनमें?'

"'आह!' वह बोली, 'लिखा है उनमें कि कैसे जवान लोग भली लड़कियों को बहकाते-फुसलाते हैं, कैसे वे यह कहकर कि उन्हें अपनी बीवी बनाना चाहते हैं, मां-बाप के घर से भगा ले जाते हैं, कैसे बाद में वे इन बदकिस्मत लड़कियों को उनकी क़िस्मत के रहम पर छोड़ देते हैं और वे बहुत दर्दनाक मौत मरती हैं। मैंने'–नानी बोली, 'बहुत-सी ऐसी किताबें पढ़ी हैं और वे सभी इतनी बढ़िया लिखी हुई हैं कि रात-भर जागकर चुपके-चुपके पढ़ी जाती हैं। हां तो, नास्तेन्का,' वह बोली, 'तुम ऐसी किताबें नहीं पढ़ना। कैसी किताबें भेजी हैं उसने?'

"'सभी वाल्टर स्कॉट के उपन्यास हैं, नानी।'

"'वाल्टर स्कॉट के उपन्यास! हां, मगर कहीं, कोई चालाकी तो नहीं है? यह देख लो कि कहीं कोई प्रेम-पत्र तो नहीं रख दिया है उसने?'

"'नहीं, नानी, कोई प्रेम-पत्र नहीं है,' मैंने कहा।

"'तुम जिल्द के नीचे भी देख लो। ये उठाईगीरे, कभी-कभी जिल्द के नीचे भी उसे छिपा देते हैं!'

"'नहीं, वहां भी कुछ नहीं है, नानी!'

"'तब ठीक है!'

"तो हमने वाल्टर स्कॉट की रचनायें पढ़नी शुरू कीं और कोई महीने भर में लगभग आधी पढ़ डालीं। इसके बाद उसने और किताबें भेजीं। पुश्किन की कृतियां भी भेजीं। आख़िर किताबों के बिना मेरा जीना ही मुश्किल हो गया और चीनी राजकुमार से शादी करने का विचार मेरे दिमाग़ से निकल गया।

"ऐसी स्थिति थी, जब एक दिन सीढ़ियों में किरायेदार से मेरी भेंट हो गयी। नानी ने किसी कारणवश मुझे ऊपर भेजा था। वह रुक गया, मैं शर्म से लाल हो गई, वह भी लाल हो गया, मगर फिर भी हंस पड़ा, उसने अभिवादन किया, नानी के स्वास्थ्य के बारे में पूछा और बोला: 'किताबें पढ़ लीं क्या?' 'पढ़ लीं,' मैंने उत्तर दिया। 'कौन-सी सब से अधिक पसन्द आईं?' 'इवानहोये और पुश्किन की रचनायें सब से अधिक अच्छी लगीं,' मैंने जवाब दिया। इस बार तो बातचीत यहीं ख़त्म हो गई।

"हफ़्ते-भर बाद सीढ़ियों में ही फिर उससे मेरी मुलाकात हो गई। इस बार नानी ने नहीं भेजा था, ख़ुद मुझे ही कुछ काम था। दिन के दो बजे के बाद का वक़्त था और किरायेदार इस वक़्त घर लौटता था। 'नमस्ते,' वह बोला। 'नमस्ते,' मैंने उत्तर दिया।

"'दिन-भर नानी के पास बैठे रहना आपको नीरस नहीं लगता?' उसने पूछा।

"जैसे ही उसने यह सवाल पूछा, वैसे ही न जाने क्यों, मैं शर्म से लाल हो गई, मुझ पर घड़ों पानी पड़ गया और फिर से मुझे सम्भवतः इस कारण दुःख हुआ कि पराये लोग भी अब इस बारे में पूछने लगे हैं। मैंने चाहा कि जवाब दिये बिना ही वहां से चली जाऊं, मगर मेरी ताकत जवाब दे गई।

"'सुनिये,' वह बोला, 'आप भली लड़की हैं। क्षमा कीजिये कि मैं आपसे ऐसी बात कह रहा हूं, मगर विश्वास दिलाता हूं कि नानी से अधिक आपकी भलाई चाहता हूं। क्या आपकी सहेलियां नहीं हैं जिनसे आप मिलने-जुलने जा सकें?'

"मैंने जवाब दिया कि सिर्फ़ एक सहेली माशा थी और वह भी प्स्कोव चली गई है।

"'सुनिये, क्या आप मेरे साथ थियेटर चलना पसन्द करेंगी?' उसने पूछा।

"'थियेटर? मगर नानी का क्या होगा?'

"'नानी को बताये बिना, चुपके से,' वह बोला।

"'नहीं,' मैंने जवाब दिया, 'मैं नानी को धोखा नहीं देना चाहती। नमस्ते!'

"'तो, नमस्ते,' इसके अतिरिक्त उसने कुछ नहीं कहा।

"हां, दोपहर के खाने के बाद यह हमारे यहां आया, बैठ गया, देर तक नानी से बातचीत करता रहा, यह पूछा कि वह घर से बाहर भी कहीं आती-जाती है, कि उसकी जान-पहचान के लोग भी हैं या नहीं और फिर अचानक बोला: 'आज मैंने 'सेविले का नाई' ऑपेरा के लिये थियेटर में एक बॉक्स किराये पर लिया है। कुछ परिचित आनेवाले थे, मगर बाद मे उन्होंने इनकार कर दिया और टिकट मेरे पास फालतू रह गये हैं।'

"'सेविले का नाई!' नानी चिल्ला उठी। 'वही सेविले का नाई ऑपेरा, जो पुराने ज़माने में पेश किया जाता था?'

"'हां, वही सेविले का नाई,' उसने जवाब दिया और मेरी ओर देखा। मैं तो सब कुछ समझ गई, लज्जारुण हो उठी और मेरा दिल प्रत्याशा में उछलने लगा!

"'इस ऑपेरा को भला मैं कैसे नहीं जानूंगी!' नानी बोली। 'किसी वक़्त अपने घरेलू थियेटर में मैं ख़ुद रोज़ीना की भूमिका खेल चुकी हूं!'

"'तो क्या आप आज चलना पसन्द नहीं करेंगी?' किरायेदार ने पूछा। 'वरना मेरे तो टिकट बेकार चले जायेंगे।'

"'हां, शायद चलेंगे ही,' नानी ने जवाब दिया। 'चलेंगे क्यों नहीं? मेरी नास्तेन्का तो कभी थियेटर गई ही नहीं।'

"हे भगवान, कितनी ख़ुश थी मैं! हम फ़ौरन तैयार होने लगीं, सजी-धजीं और चल पड़ीं। नानी बेशक अंधी है, फिर भी संगीत सुनने को उसका मन ललक उठा। इसके अलावा वह दयालु वृद्धा है – सब से अधिक तो मेरा मन बहलाना चाहती थी। हम ख़ुद तो कभी थियेटर जाने का कार्यक्रम बना न पाते। 'सेविले के नाई' का मेरे दिल पर कैसा प्रभाव हुआ, यह मैं आपको नहीं बताऊंगी। केवल इतना ही कहूंगी कि उस सारी शाम को हमारा किरायेदार मेरी ओर ऐसे ढंग से देखता और बातें करता रहा कि मैं फ़ौरन समझ गयी कि सुबह यह प्रस्ताव करके कि मैं उसके साथ अकेली थियेटर चलूं, वह मेरी परीक्षा ले रहा था। मेरी ख़ुशी का पारावार नहीं था! मैं ऐसी गर्वीली और इतनी ख़ुश-ख़ुश बिस्तर पर गई, ऐसे ज़ोरों से मेरा दिल धड़क रहा था कि हल्का-सा बुख़ार भी हो गया और मैं रात-भर 'सेविले के नाई' के बारे में ही बड़बड़ाती रही।

"मेरा ख़याल था कि इसके बाद वह अक्सर हमारे पास आया करेगा – मगर ऐसा नहीं हुआ। उसने तो लगभग आना ही बन्द कर दिया। महीने

में एक बार आता और सो भी थियेटर के लिये आमंत्रित करने को। एक-दो बार हम फिर थियेटर गये, मगर इससे मुझे बिल्कुल ख़ुशी नहीं हुई। मैं समझ गई कि उसे सिर्फ़ इस बात के लिये मुझ पर दया आती थी कि मैं नानी के साथ ऐसे बंधी बैठी थी और इससे अधिक कुछ नहीं। इसी तरह वक़्त गुज़रता गया, गुज़रता गया और आख़िर मेरी अजीब-सी हालत हो गई। अब न तो मुझसे टिककर बैठा जाता, न पढ़ा जाता, न काम किया जाता, कभी-कभी हंसती और नानी को चिढ़ाने के लिये जान-बूझकर कोई हरकत करती और फिर कभी बस, रोने लगती। आख़िर मैं बहुत दुबला गई और लगभग मरीज़ा हो गई। ऑपेरा का सीज़न ख़त्म हो गया और किरायेदार ने बिल्कुल ही आना बन्द कर दिया। जब कभी हमारी भेंट हो जाती–ज़ाहिर है कि उन्हीं सीढ़ियों में–तो वह ऐसे चुपचाप और ऐसे गम्भीरता से सिर झुका देता मानो बात ही न करना चाहता हो। वह तो ओसारे तक पहुंच जाता और मैं चेरी की तरह लाल हुई, क्योंकि उससे भेंट होने पर मेरा सारा ख़ून सिर की तरफ़ दौड़ने लगता था, सीढ़ियों के बीचोंबीच खड़ी रह जाती।

"बस, अब कहानी समाप्त ही होनेवाली है। पिछले साल की मई में हमारा किरायेदार आया और नानी से बोला कि यहां उसने अपने सभी काम-काज निपटा लिये हैं और अब उसे फिर से एक साल के लिये मास्को जाना होगा। मैंने जैसे ही यह सुना, तो मेरे चेहरे का रंग उड़ गया और बेजान-सी कुर्सी पर गिर पड़ी। नानी को कुछ भी पता नहीं चला और किरायेदार ने यह कहकर कि हमारे यहां से जा रहा है, सिर झुकाया और बाहर चला गया।

"मैं क्या करूं? मैं सोचती रही, सोचती रही, बेहद परेशान होती रही, दुःखी होती रही और आख़िर मैंने निर्णय कर लिया। उसे अगले दिन जाना था और मैंने यह तय किया कि रात को जब नानी बिस्तर पर चली जायेगी, तब मैं यह क़िस्सा ख़त्म कर डालूंगी। ऐसा ही हुआ भी। मैंने सभी फ़्राकों और दूसरे ज़रूरी कपड़ों की गठरी बांधी और उसे हाथ में लिये हुए जीती-मरती-सी किरायेदार की अटारी की ओर चल दी। मेरे ख़याल में सीढ़ियां चढ़ने में मुझे पूरा एक घण्टा लगा होगा। जब मैंने उसका दरवाज़ा खोला तो वह मुझे देखकर चीख़ उठा। उसने समझा कि मैं कोई भूत हूं और फिर वह मुझे पानी देने के लिये लपका, क्योंकि

मैं तो बड़ी मुश्किल से खड़ी रह पा रही थी। दिल बहुत जोर से धड़क रहा था, सिर में दर्द हो रहा था और मेरा दिमाग़ चक्कर खा रहा था। जब मुझे कुछ होश आया, तो किसी तरह की भूमिका के बिना मैंने अपनी गठरी उसके पलंग पर रख दी, ख़ुद उसके पास बैठ गई, हाथों से मुंह ढांप लिया और फूट-फूटकर रोने लगी। वह फ़ौरन सब कुछ समझ गया। उसका चेहरा जर्द हो उठा और मेरे सामने खड़ा हुआ ऐसी उदास नज़र से मुझे देखता रह गया कि मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े होने लगा।

"'सुनिये,' उसने कहना शुरू किया, 'सुनिये, नास्तेन्का, मैं कुछ भी तो नहीं कर सकता। मैं ग़रीब आदमी हूं, अभी तो मेरे पास कुछ भी नहीं है, यहां तक कि ढंग की नौकरी भी नहीं है। अगर मैं आपसे शादी कर लूं तो हमारा गुज़ारा कैसे चलेगा?'

"हम देर तक बातें करते रहे और आख़िर मैं भावावेश में आकर कह उठी कि नानी के पास अब और नहीं रह सकती, उसे छोड़कर भाग जाऊंगी, कि यह नहीं चाहती कि पिन लगाकर मुझे बिठाये रखा जाये और, वह चाहे या न चाहे, मैं तो उसके साथ मास्को जाऊंगी, क्योंकि उसके बिना जिन्दा नहीं रह सकती। लज्जा, प्यार और गर्व–सभी एकसाथ मेरे दिल में उबल पड़े और मैं लगभग बेहोश होकर पलंग पर गिर पड़ी। मैं इस बात से बहुत डर रही थी कि वह कहीं इनकार न कर दे!

"वह कुछ क्षण तक चुपचाप बैठा रहा, फिर उठा, मेरे पास आया और उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया।

"'सुनिये, मेरी दयालु, मेरी प्यारी नास्तेन्का!' उसने भी आंसू बहाते हुए कहना शुरू किया, 'मेरी बात सुन लीजिये। क़सम खाता हूं कि अगर कभी मैं शादी करने के लायक हूंगा, तो निश्चय ही आप मेरी ख़ुशी बनेंगी। यक़ीन दिलाता हूं कि अब केवल आप ही मेरा सौभाग्य बन सकती हैं। सुनिये–मैं मास्को जा रहा हूं और साल-भर वहां रहूंगा। मुझे आशा है कि वहां अपना काम-काज ठीक कर लूंगा। जब लौटूंगा, और अगर उस समय तक आपका प्यार बना रहा, तो क़सम खाता हूं, कि हम सौभाग्यशाली होंगे। इस वक़्त तो यह असम्भव है, मैं ऐसा नहीं कर सकता, मुझे तो वादा करने का भी अधिकार नहीं है। दोहराता हूं कि अगर एक साल बाद ऐसा न हुआ तो कभी न कभी तो अवश्य ही ऐसा होगा–



–ज़ाहिर है कि उस हालत में, अगर आप किसी दूसरे को मुझ पर तरजीह नहीं देंगी, क्योंकि मैं आपको वचनबद्ध नहीं कर सकता और ऐसा करने की जुर्रत भी नहीं कर सकता।'

"तो उसने यह कहा और अगले दिन चला गया। हमने यह तय किया था कि नानी से इसके बारे में एक भी शब्द न कहा जाये। ऐसा उसने चाहा था। बस, मेरी कहानी लगभग समाप्त हो गई। एक साल गुज़र चुका है। वह लौट आया है, पूरे तीन दिनों से यहां है और..."

"और क्या?" अन्त जानने के लिये मैं बेसब्री से चीख़ उठा।

"और अब तक उसने अपनी सूरत नहीं दिखाई!" मानो अपनी शक्ति बटोरते हुए नास्तेन्का ने कहा। "कोई अता-पता ही नहीं है उसका..."

इतना कहकर वह रुकी, कुछ देर चुप रही, उसने सिर झुकाया और अचानक दोनों हाथों से मुंह ढांप कर ऐसे सिसकने लगी कि उसकी सिसकियों से मेरा कलेजा फटने लगा।

मैंने ऐसे अन्त की बिल्कुल आशा नहीं की थी।

"नास्तेन्का!" मैंने दिलासा देते हुए सहमी-सी आवाज़ में कहा। "नास्तेन्का! भगवान के लिये रोइये नहीं! आपको भला क्या मालूम? हो सकता है कि वह अभी आया ही न हो..."

"यहां है, यहां है!" नास्तेन्का ने मेरी बात काटते हुए कहा। "वह यहां है, मैं यह जानती हूं। तभी, उसी शाम को, उसके जाने के पहले ही हमने सब कुछ तय कर लिया था। जो कुछ मैंने आपको सुनाया है, जब हम वह सब कुछ कह-सुन और तय कर चुके तो घूमने के लिये बाहर निकले यानी यहीं नदी के घाट पर आये। रात के दस बजे थे, हम इसी बेंच पर बैठे थे। मैं तब रो नहीं रही थी, उसकी बातें सुन-सुनकर मस्त हो रही थी... उसने कहा था कि यहां लौटते ही हमारे घर आयेगा और अगर मैं उसके बारे में अपना इरादा नहीं बदलूंगी, तो हम सब कुछ नानी से कह देंगे। अब वह आ चुका है, मैं यह जानती हूं, मगर अभी तक हमारे यहां नहीं आया, नहीं आया!"

उसने फिर से आंसुओं की झड़ी लगा दी।

"हे भगवान! क्या किसी तरह भी आपकी मदद नहीं की जा सकती?" मैं बेहद दुःखी होते हुए बेंच से उठकर चिल्ला पड़ा। "कहिये, नास्तेन्का, क्या मैं उसके पास नहीं जा सकता?.."

"क्या यह मुमकिन है?" अचानक सिर उठाकर उसने पूछा।

"नहीं, बेशक, नहीं!" अपनी भूल सुधारते हुए मैंने कहा। "आप ऐसा कीजिये, ख़त लिख दीजिये।"

"नहीं, यह सम्भव नहीं, ऐसा करना ठीक नहीं होगा!" उसने निर्णायक ढंग से, मगर सिर झुकाकर और मेरी नज़र बचाते हुए कहा।

"क्यों ठीक नहीं होगा? किसलिये ठीक नहीं होगा?" अपने विचार को आगे बढ़ाते हुए मैं कहता गया। "मगर जानती हैं कि कैसा ख़त! ख़त भी तरह-तरह के होते हैं... आह, नास्तेन्का, मैं सच कहता हूं। मुझ पर भरोसा कीजिये, भरोसा कीजिये! मैं आपको कोई बुरी सलाह नहीं दूंगा। इस मामले को ठीक-ठाक किया जा सकता है। आप ही ने तो तब पहला कदम उठाया था—तो अब क्या..."

"नहीं, यह ठीक नहीं होगा! तब ऐसा लगेगा मानो मैं अपने को उस पर थोप रही हूं..."

"आह, मेरी दयालु नास्तेन्का," मैंने अपनी मुस्कान को न छिपाते हुए उसे टोका। "नहीं, ऐसी बात नहीं है। आपको ऐसा करने का अधिकार है, क्योंकि उसने आपसे वादा किया था। सभी बातों को ध्यान में रखते हुए मैं इस नतीजे पर पहुंचता हूं कि वह शरीफ़ आदमी है, कि उसने बहुत अच्छा व्यवहार किया है," अपने तर्कों और निष्कर्षों की सुसंगतता से अधिकाधिक ख़ुश होता हुआ मैं कहता गया। "कैसा व्यवहार किया है उसने? उसने अपने को तो वचनबद्ध कर लिया। उसने कहा कि अगर शादी करेगा तो आपसे ही। मगर आपको उसने किसी तरह के बन्धन में नहीं बांधा। आप चाहे तो इसी वक़्त उससे शादी करने से इनकार कर सकती हैं... इसलिये आप पहल कर सकती हैं, आपको इसका अधिकार है, उसकी तुलना में आपकी स्थिति इसलिए बेहतर है कि, उदाहरण के लिये, अगर आप उसे वचनमुक्त ही करना चाहती हों..."

"कहिये तो, आप कैसे लिखते?"

"क्या?"

"यही ख़त।"

"मैं तो ऐसे लिखता— 'श्रीमान जी...'"

"क्या यह लिखना जरूरी है—श्रीमान जी?"

"जरूरी है! मगर शायद जरूरी न हो? मै सोचकर..."

"ख़ैर, ख़ैर! आगे बढ़िये।"

"'श्रीमान जी...

क्षमा कीजियेगा कि मैं...' नहीं, क्षमा मांगने की कोई जरूरत नही है। ख़ुद हक़ीक़त ही हर चीज की सफाई पेश करती है। सीधे-सीधे लिखिये—

"'मैं आपको पत्र लिख रही हूं। मेरी इस अधीरता के लिये क्षमा कीजियेगा। मैं साल-भर आशा को दिल में संजोये हुए सुखी रही। क्या मैं इसके लिये दोषी हूं कि अब शंका का एक दिन भी नहीं काट पाती? अब, जबकि आप यहां आ चुके हैं, शायद आपने अपना इरादा बदल लिया है। तब यह पत्र आपसे कहेगा कि मैं न तो आपकी शिकायत करती हूं और न आपको दोषी ही ठहराती हूं। अगर आपका दिल नहीं जीत सकती, तो इसके लिये आपको दोष कैसे दे सकती हूं। मेरा भाग्य ही ऐसा है।

"'आप सज्जन व्यक्ति हैं। अधीरता में लिखी गई इन पंक्तियों पर आप न तो मुस्करायेंगे और न झल्लायेंगे ही। याद रखिये कि एक बेचारी दीन लड़की ने इन्हें लिखा है, कि वह एकाकी है, कि उसे शिक्षा और सलाह देनेवाला कोई नहीं है, कि वह स्वयं अपने दिल को कभी वश में नहीं रख पाई है। मगर घड़ी-भर को भी मेरी आत्मा में जो शंका घुस आई थी, उसके लिये मुझे क्षमा कीजियेगा। आप तो विचारों में भी कभी उसके दिल को ठेस नहीं लगा सकते जो आपको इतना प्यार करती थी और करती है।'"

"हां, हां! यह तो बिल्कुल वैसा ही है जैसा कि मैंने सोचा था!" नास्तेन्का चिल्लायी और उसकी आंखों में ख़ुशी चमक उठी। "ओह! आपने मेरे सन्देह दूर कर दिये, स्वयं भगवान ने आपको मेरे पास भेजा है! आभारी हूं, आपकी आभारी हूं!"

"किस चीज के लिये? इसलिये कि स्वयं भगवान ने मुझे भेजा है?" उसके खिले चेहरे को ख़ुशी से देखते हुए मैंने कहा।

"हां, चाहे इस के लिये ही सही।"

"आह, नास्तेन्का! कभी-कभी हम कुछ लोगों के केवल इसलिये आभारी होते हैं कि वे हमारे साथ इस दुनिया में सांस लेते हैं। मैं आपका

इसलिये आभारी हूं कि आप से मेरी भेंट हुई, कि जीवन-भर आपको याद रखूंगा।"

"बस, बस, काफ़ी है! अब मेरी बात सुनिये—तब हम दोनों ने यह तय किया था कि जैसे ही वह यहां आयेगा, वैसे ही मेरे परिचितों को, जो भले और सीधे-सादे लोग हैं और इस बारे में कुछ भी नहीं जानते, पत्र देकर अपने आने की सूचना देगा। अगर पत्र लिखना ठीक नहीं होगा, क्योंकि पत्र में सभी कुछ तो हमेशा बयान नहीं किया जा सकता, तो यहां आने के दिन ही रात के ठीक दस बजे इसी जगह, जहां हम ने मिलने की जगह तय की थी, आ जायेगा। वह आ गया है, यह मुझे मालूम है। उसे यहां आये हुए आज तीसरा दिन हो गया है, मगर न तो उसका ख़त आया है और न वह ख़ुद ही। दिन के वक़्त नानी को छोड़कर जाना मेरे लिये बिल्कुल असम्भव है। उन भले लोगों को, जिनकी मैं आपसे चर्चा कर रही हूं, कल मेरा ख़त दे दीजियेगा। वे ख़ुद ही उसे भेज देंगे और अगर कोई जवाब आयेगा तो आप ही रात के दस बजे उसे यहां ले आइयेगा।"

"मगर ख़त, ख़त कहां है! उसे तो अभी लिखना होगा! इसलिये परसों ही यह सब हो सकेगा।"

"ख़त..." नास्तेन्का ने तनिक घबराकर कहा—"ख़त..."

उसने अपनी बात पूरी नहीं की। उसने अपना मुंह फेर लिया, गुलाब की तरह लज्जारुण हुई और अचानक मैंने अपने हाथ में पत्र अनुभव किया। ज़ाहिर है कि यह पहले से ही लिख लिया गया था, बिल्कुल तैयार और मुहरबन्द था। कोई जानी-पहचानी, प्यारी-प्यारी और मधुर स्मृति मेरे मस्तिष्क में कौंध गई।

"रो-रो, ज़ी-ज़ी, ना," मैंने शुरू किया।

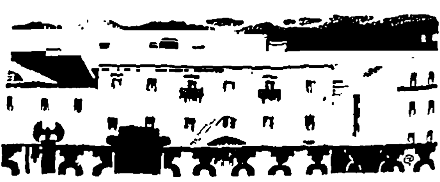
"रोज़ीना!" हम दोनों एक साथ गा उठे। ख़ुशी की तरंग में मैं तो उसे बाहुपाश में बांधता-बांधता ही रह गया, वह शर्म से बेहद लाल हो उठी और आंसुओं के बीच, जो
पर चमक रहे थे, हंसती रही
"बस, काफी है, काफी
"यह ख़त लीजिये और यह
नमस्ते! कल फिर मिलेंगे!"



उसने जोर से मेरे दोनों हाथ दबाये, सिर झुकाया और तनी हुई अपने कूचे की ओर उड़ चली। मैं देर तक वहीं खड़ा रहा, उसे जाते हुए देखता रहा।

"कल फिर मिलेंगे! कल फिर मिलेंगे!" उसके नज़र से ओझल हो जाने पर ये शब्द मेरे दिमाग़ में गूंजते रहे।





तीसरी रात

आज दिन बहुत उदास-उदास था, पानी बरसता रहा, अंधेरा-सा छाया रहा। मेरे भावी बुढ़ापे-सा ही सूना दिन था यह। बड़े अजीब-अजीब से विचार, बड़ी धुंधली-धुंधली-सी भावनायें, अस्पष्ट-से प्रश्न मेरे मन मे उमड़-घुमड़ रहे थे। उन्हें समझने-सुलझाने की न तो मुझमें शक्ति थी और न इच्छा ही। इनका समाधान ढूंढ़ना मेरे बस की बात नहीं थी!

आज हमारी भेंट नहीं होगी। कल, हमारे विदा लेने के समय आकाश में बादल घिरने लगे थे, कुहासा छाने लगा था। मैंने कहा था कि कल मौसम बहुत बुरा रहेगा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया था, वह अपने को निराश नहीं करना चाहती थी। उसके लिये तो ऐसा दिन भी उजला और रोशन होगा, उसकी ख़ुशी पर तो छोटी-सी बदली भी नहीं छा सकेगी।

"अगर बारिश होगी, तो हम नहीं मिलेंगे!" उसने कहा। "मैं नहीं आऊंगी।"

मेरा ख़याल था कि आज की बारिश की ओर उसका ध्यान ही नहीं गया होगा, मगर फिर भी वह नहीं आई।

कल हमारी तीसरी मुलाक़ात हुई थी, कल हमारी तीसरी रजत रात थी...

हां, ख़ुशी और सुखसौभाग्य व्यक्ति को कितना अद्भुत बना देते हैं! प्यार दिल में छलका पड़ता है! ऐसी इच्छा होती है कि हम अपने दिल का सारा प्यार किसी दूसरे दिल में उंडेल दें, जी चाहता है कि हर चीज़ ख़ुश हो, हर चीज़ हंसे-मुस्कराये। कैसे दूसरों को अपनी छूत देती है यह



ख़ुशी! कल उसके शब्दों में कितना परम सुख था, मेरे प्रति कितनी सरलता थी... कितनी मधुर थी वह मेरे साथ, कैसे मुझे दुलारती थी, कैसे मेरे दिल को दिलासा देती थी, सहलाती थी! ओह, इसी ख़ुशी के कारण कितनी चंचलता दिखायी थी उसने! और मैंने... मैंने यह सब कुछ सच समझा था। मैंने सोचा था कि वह...

मगर, हे भगवान, मैंने ऐसा सोचा ही कैसे? मेरी आंखों पर यह परदा कैसे है, जबकि सब कुछ कोई दूसरा लूट चुका है, जब सब कुछ पराया है, जब मेरे प्रति उसकी वह कोमलता, वह लाड़, वह प्यार... हां, मेरे प्रति उसका प्यार भी, जल्द ही दूसरे से होनेवाले मिलन की ख़ुशी, मुझ पर अपनी ख़ुशी थोपने की इच्छा के सिवा कुछ नहीं था?.. मगर जब वह नहीं आया, जब उसकी राह देखते-देखते हम निराश हो गये थे, तब कैसे उसके माथे पर बल पड़े थे, तो वह कैसे सहम गई थी, भयभीत हो उठी थी। उसके हावों-भावों, उसके शब्दों में वह चंचलता, चपलता, वह ख़ुशी नहीं रही थी। और कितनी अजीब बात है यह कि वह मेरी ओर पहले से कहीं अधिक ध्यान देने लगी थी मानो सहज भाव से वही कुछ मुझ पर उंडेल देना चाहती हो, जिसकी स्वयं इच्छुक थी, जिसके न होने के भय से आतंकित थी। मेरी नास्तेन्का इतनी सहम गई थी, इतनी भयभीत हो उठी थी कि लगता है कि आख़िर यह समझ गई थी कि मैं उसे प्यार करता हूं और उसे मेरे दीन प्यार पर दया आ गई थी। इसीलिये जब हम ख़ुद दुःखी होते हैं, तो दूसरों के दुःख की हमें कहीं अधिक अनुभूति होती है; तब भावना मरती नहीं, संकेन्द्रित हो जाती है...

मैं भावनाओं से ओत-प्रोत हृदय लिये हुए उससे मिलने गया और मिलन-वेला की प्रतीक्षा मुझ पर बहुत भारी गुजरी। मुझे इसका पूर्वाभास नहीं हुआ था जो अब अनुभव करूंगा, यह पूर्वाभास नहीं हुआ था कि अन्त कुछ दूसरा ही होगा। उसकी ख़ुशी फूटी पड़ रही थी, वह जवाब की प्रतीक्षा में थी। जवाब वह ख़ुद ही हो सकता था। वह आयेगा पुकार पर दौड़ता हुआ आयेगा। वह मेरे पहुंचने से आ गई थी। शुरू में वह हर बात पर ठहाके लगाती पर हंसती रही। मैं अपनी बात कहनेवाला था,

"जानते हैं कि मैं इतनी ख़ुश क्यों हूं!" उसने कहा। "आपको देखक किसलिये इतनी प्रसन्न हूं? क्यों इतना प्यार करती हूं आज आपको?

"क्यों?" मैंने पूछा और मेरा हृदय कांप उठा।

"मैं इसलिये प्यार करती हूं आपको कि आप मुझ से प्यार नहीं करने लगे। आपकी जगह कोई दूसरा होता तो परेशान करने लगता, पीछे प जाता, आहें भरता, उद्विग्न हो उठता, मगर आप इतने भले हैं!"

इतना कहकर उसने इतने ज़ोर से मेरा हाथ दबाया कि मैं चिल्लाता-चिल्लाता रह गया। वह हंस दी।

"हे भगवान! कितने अच्छे दोस्त हैं आप!" घड़ी-भर बाद उसने बहुत गम्भीरता से कहना शुरू किया। "हां, भगवान ने ही आपको मेरे पास भेजा है! अगर इस समय आप मेरे साथ न होते, तो मुझ पर क्या गुज़रती? कितने निस्स्वार्थ हैं आप! कितना अच्छा है मेरे प्रति आपका प्यार! मेरे शादी कर लेने के बाद हम बहुत ही अच्छे मित्र होंगे, भाई-बहनों से भी बढ़कर। मैं आपको लगभग उसके समान ही प्यार करूंगी..."

इस क्षण मैं बेहद उदास हो गया, मगर हंसी जैसी कोई चीज़ मेरी आत्मा में हिली-डुली।

"इस वक़्त आप पर घबराहट का दौरा पड़ा हुआ है," मैंने कहा, "आप डर रही हैं, आपका ख़्याल है कि वह नहीं आयेगा।"

"यह आप क्या कह रहे हैं!" उसने कहा। "अगर मैं कुछ कम ख़ुश होती, तो लगता है कि आपके इस अविश्वास और फटकार से रो पड़ती। मगर फिर भी आपने मुझे सोच में डाल दिया है और मैं बहुत समय तक सोचती रहूंगी। पर ऐसा मैं बाद में करूंगी और इस वक़्त तो यह स्वीकार करती हूं कि आपने जो कुछ कहा, वह सच है। हां! मैं ख़ुद अपने मे नहीं हूं, प्रत्याशा में हूं और भावनाओं के वेग में बही जाती हूं। पर ख़ैर, भावनाओं की बात नहीं करेंगे!.."

इसी वक़्त आहट सुनाई दी और अंधेरे में एक राहगीर हमारी ओर आता दिखाई दिया। हम दोनों कांप उठे, वह तो चीख़ती-चीख़ती रह गई। मैंने उसका हाथ छोड़ दिया और ऐसा संकेत किया मानो उससे दूर हटना चाहता हूं। किन्तु हमसे भूल हुई थी—यह वह नहीं था।

"आपको डर किस बात का है? आपने मेरा हाथ क्यों छोड़ दिया?" फिर से अपना हाथ मुझे देते हुए उसने कहा। "ऐसी भी क्या बात है?

हम एकसाथ उससे मिलेंगे। मैं चाहती हूं कि वह यह देखे कि हम एक-दूसरे को कितना प्यार करते हैं।"

"हम एक-दूसरे को कितना प्यार करते हैं!" मैं चिल्ला उठा।

"ओह, नास्तेन्का, नास्तेन्का।" मैंने मन ही मन सोचा। "इन शब्दों में तुमने कितना कुछ कह डाला है! इस तरह के प्यार से, नास्तेन्का, कभी-कभी दिल में झुरझुरी होने लगती है और आत्मा दोलित हो उठती है। तुम्हारा हाथ ठण्डा है और मेरा आग की तरह गर्म। बिल्कुल अन्धी हो तुम तो, नास्तेन्का!.. ओ! कभी-कभी मुझे आदमी कितना असह्य हो जाता है। मगर मैं तुम से नाराज नहीं हो सकता!.."

आख़िर मेरे दिल का प्याला छलक गया।

"सुनिये, नास्तेन्का।" मैं चिल्ला उठा। "जानती हैं कि आज दिन-भर मेरे साथ क्या बीतती रही है?"

"क्या बीतती रही है? कहिये, जल्दी से कहिये। आप अब तक चुप्पी क्यों साधे रहे!"

"सब से पहले तो यह कि मैंने आपके सभी आदेश पूरे कर दिये, आपके भले लोगों के पास जाकर ख़त दे दिया, और उसके बाद... और उसके बाद मैं घर जाकर सो रहा।"

"बस, इतना ही?" उसने हंसते हुए मुझे टोका।

"हां, लगभग इतना ही," मैंने दिल पर क़ाबू पाते हुए जवाब दिया, क्योंकि नादान आंसू आंखों में उमड़ने लगे थे। "हमारी मिलन-वेला से एक घण्टा पहले मैं जागा, मगर जैसे कि सोया ही नहीं। मालूम नहीं कि मुझे क्या हुआ था। मैं आपको यह सब कुछ बताने यहां आ रहा था, कि मानो समय मेरे लिये रुक गया, कि मानो इस समय से एक ही अनुभूति, एक ही भावना सदा-सदा को मेरे साथ रहेगी, कि मानो एक क्षण ही अनन्त काल तक बना रहेगा, कि समय ही मेरे लिये रुककर रह गया है... जब मैं जागा तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई चिर-परिचित धुन, जिसे मैंने कभी कहीं सुना था, बहुत प्यारी और भूली-बिसरी धुन, मुझे फिर से याद हो आयी है। मुझे लगा कि जीवन-भर वह मेरी आत्मा में से फूट पड़ने को मचलती रही है और केवल अभी..."

"आह, मेरे भगवान, मेरे भगवान!" नास्तेन्का ने मुझे टोका। "यह सब क्या है? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा।"

"जानते हैं कि मैं इतनी ख़ुश क्यों हूं!" उसने कहा। "आपको देखकर किसलिये इतनी प्रसन्न हूं? क्यों इतना प्यार करती हूं आज आपको?"

"क्यों?" मैंने पूछा और मेरा हृदय कांप उठा।

"मैं इसलिये प्यार करती हूं आपको कि आप मुझ से प्यार नहीं करने लगे। आपकी जगह कोई दूसरा होता तो परेशान करने लगता, पीछे पड़ जाता, आहें भरता, उद्विग्न हो उठता, मगर आप इतने भले हैं!"

इतना कहकर उसने इतने ज़ोर से मेरा हाथ दबाया कि मैं चिल्लाता-चिल्लाता रह गया। वह हंस दी।

"हे भगवान! कितने अच्छे दोस्त हैं आप!" घड़ी-भर बाद उसने बहुत गम्भीरता से कहना शुरू किया। "हां, भगवान ने ही आपको मेरे पास भेजा है! अगर इस समय आप मेरे साथ न होते, तो मुझ पर क्या गुज़रती? कितने निस्स्वार्थ हैं आप! कितना अच्छा है मेरे प्रति आपका प्यार! मेरे शादी कर लेने के बाद हम बहुत ही अच्छे मित्र होंगे, भाई-बहनों से भी बढ़कर। मैं आपको लगभग उसके समान ही प्यार करूंगी..."

इस क्षण मैं बेहद उदास हो गया, मगर हंसी जैसी कोई चीज़ मेरी आत्मा में हिली-डुली।

"इस वक़्त आप पर घबराहट का दौरा पड़ा हुआ है," मैंने कहा, "आप डर रही हैं, आपका ख़याल है कि वह नहीं आयेगा।"

"यह आप क्या कह रहे हैं!" उसने कहा। "अगर मैं कुछ कम ख़ुश होती, तो लगता है कि आपके इस अविश्वास और फटकार से रो पड़ती। मगर फिर भी आपने मुझे सोच में डाल दिया है और मैं बहुत समय तक सोचती रहूंगी। पर ऐसा मैं बाद में करूंगी और इस वक़्त तो यह स्वीकार करती हूं कि आपने जो कुछ कहा, वह सच है। हां! मैं ख़ुद अपने में नहीं हूं, प्रत्याशा में हूं और भावनाओं के वेग में बही जाती हूं। पर ख़ैर, भावनाओं की बात नहीं करेंगे!.."

इसी वक़्त आहट सुनाई दी और अंधेरे में एक राहगीर हमारी ओर आता दिखाई दिया। हम दोनों कांप उठे, वह तो चीख़ती-चीख़ती रह गई। मैंने उसका हाथ छोड़ दिया और ऐसा संकेत किया मानो उससे दूर हटना चाहता हूं। किन्तु हमसे भूल हुई थी—यह वह नहीं था।

"आपको डर किस बात का है? आपने मेरा हाथ क्यों छोड़ दिया?" फिर से अपना हाथ मुझे देते हुए उसने कहा। "ऐसी भी क्या बात है?

हम एकसाथ उससे मिलेंगे। मैं चाहती हूं कि वह यह देखे कि हम एक-दूसरे को कितना प्यार करते हैं।"

"हम एक-दूसरे को कितना प्यार करते हैं!" मैं चिल्ला उठा।

"ओह, नास्तेन्का, नास्तेन्का।" मैंने मन ही मन सोचा। "इन शब्दों में तुमने कितना कुछ कह डाला है! इस तरह के प्यार से, नास्तेन्का, कभी-कभी दिल में झुरझुरी होने लगती है और आत्मा बोझिल हो उठती है। तुम्हारा हाथ ठण्डा है और मेरा आग की तरह गर्म। बिल्कुल अन्धी हो तुम तो, नास्तेन्का! .. ओ! कभी-कभी सुखी आदमी कितना असह्य हो जाता है। मगर मैं तुम से नाराज़ नहीं हो सकता! .."

आख़िर मेरे दिल का प्याला छलक गया।

"सुनिये, नास्तेन्का।" मैं चिल्ला उठा। "जानती हैं कि आज दिन-भर मेरे साथ क्या बीतती रही है?"

"क्या बीतती रही है? कहिये, जल्दी से कहिये! आप अब तक चुप्पी क्यों साधे रहे!"

"सब से पहले तो यह कि मैंने आपके सभी आदेश पूरे कर दिये, आपके भले लोगों के पास जाकर ख़त दे दिया, और उसके बाद... और उसके बाद मैं घर जाकर सो रहा।"

"बस, इतना ही?" उसने हंसते हुए मुझे टोका।

"हां, लगभग इतना ही," मैंने दिल पर क़ाबू पाते हुए जवाब दिया, क्योंकि नादान आंसू आंखों में उमड़ने लगे थे। "हमारी मिलन-वेला से एक घण्टा पहले मैं जागा, मगर जैसे कि सोया ही नहीं। मालूम नहीं कि मुझे क्या हुआ था। मैं आपको यह सब कुछ बताने यहां आ रहा था, कि मानो समय मेरे लिये रुक गया, कि मानो इस समय से एक ही अनुभूति, एक ही भावना सदा-सदा को मेरे साथ रहेगी, कि मानो एक क्षण ही अनन्त काल तक बना रहेगा, कि समय ही मेरे लिये रुककर रह गया है... जब मैं जागा तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई चिर-परिचित धुन, जिसे मैंने कभी कहीं सुना था, बहुत प्यारी और भूली-बिसरी धुन, मुझे फिर से याद हो आयी है। मुझे लगा कि जीवन-भर वह मेरी आत्मा में से फूट पड़ने को मचलती रही है और केवल अभी..."

"आह, मेरे भगवान, मेरे भगवान!" नास्तेन्का ने मुझे टोका। "यह सब क्या है? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा।"

"आह, नास्तेन्का! मैं इस अजीब अनुभूति को किसी तरह आप तक पहुंचा देना चाहता था..." मैंने दुःखी आवाज़ में कहना शुरू किया, जिसमें अभी भी आशा की किरण बेशक बहुत हल्की-सी झलक रही थी।

"बस, बस, रहने दीजिये!" उसने कहा और यह चालाक लड़की पलक झपकते में ही सब कुछ भांप गई!

अचानक वह असाधारण रूप से बातूनी, ख़ुश और चंचल हो उठी। उसने मेरी बांह अपनी बांह में डाल ली, हंसने लगी और यह चाहा कि मैं भी हंसूं और घबराहट में कहे गये मेरे हर शब्द पर वह लम्बे और ज़ोरदार ठहाके लगाती... मैं झल्लाने लगा और उसने अचानक चोंचलेबाज़ी शुरू कर दी।

"एक बात कहूं," उसने कहना आरम्भ किया, "मुझे इस बात का थोड़ा-सा अफ़सोस तो है कि आपको मुझ से प्यार नहीं हुआ। अब आदमी को कोई समझ ही क्या सकता है! फिर भी श्रीमान हठीराम, आप इस बात के लिये मेरी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते कि मैं इतनी सीधी-सादी हूं। कैसी भी ऊटपटांग बात मेरे दिमाग़ में क्यों न आये, मैं आपसे सब कुछ, सभी कुछ कह देती हूं।"

"सुनिये! यह क्या ग्यारह बज रहे हैं?" दूरी पर शहर के घण्टाघर की घड़ी की मधुर टनटनाहट सुनते हुए मैंने कहा। वह अचानक हंसना बन्द करके ख़ामोश हो गई और गिनती करने लगी।

"हां, ग्यारह बज गये हैं," आख़िर उसने सहमी और कांपती हुई आवाज़ में कहा।

मुझे फ़ौरन इस बात का अफ़सोस हुआ कि मैंने उसे डरा दिया, उसे घण्टों की गिनती करने के लिए मजबूर किया और झल्लाहट के दौरे के लिये मैंने अपनी लानत-मलामत की। मैं उसके दुःख से दुःखी हो उठा और मेरी समझ में यह नहीं आता था कि अपने इस गुनाह से निजात पाने के लिये क्या करूं। मैं उसे तसल्ली देने, उसके न आने के बहाने गढ़ने लगा, तरह-तरह की दलीलें और सबूत पेश करने लगा। नास्तेन्का को इस वक़्त धोखा देना तो बहुत ही आसान था। वास्तव में ऐसी स्थिति में कोई भी हर तरह की तसल्ली पर ख़ुशी से कान देने को तैयार होगा, मामूली-सी सफ़ाई पेश किये जाने पर ख़ुश होगा।

"हां, और यह बड़ी अजीब-सी बात है," अधिकाधिक उत्साहित

और अपने तर्कों की असाधारण स्पष्टता पर मुग्ध होते हुए मैंने कहना शुरू किया, "यह तो आ ही नहीं सकता था। आपने तो मुझे भी उलटे चक्कर और भ्रम में डाल दिया, नास्तेन्का। यहां तक कि मैं भी वक़्त का हिसाब भूल गया... आप ज़रा ध्यान दीजिये – उसे ख़त अभी मिला ही होगा, हो सकता है कि वह आने में असमर्थ हो, हो सकता है कि वह जवाब दे और तब कल से पहले तो ख़त आ ही नहीं सकता। मैं कल सुबह ही सुबह इसके लिये जाऊंगा और फ़ौरन आपको इसकी ख़बर दूंगा। यह भी ध्यान में रखिये कि हज़ारों अप्रत्याशित बातें हो सकती हैं – जब ख़त पहुंचा हो, तो मुमकिन है कि वह घर पर न हो और यह भी सम्भव है कि अब तक उसे ख़त मिला ही न हो? सभी कुछ तो हो सकता है।"

"हां, हां!" नास्तेन्का ने जवाब दिया। "मैंने यह सब तो सोचा ही नहीं। बेशक, सब कुछ हो सकता है," वह विनम्र अन्दाज़ में कहती गई, मगर किसी दूसरे, किसी अस्पष्ट से विचार का अवसादपूर्ण और बेसुरा स्वर उसकी आवाज़ में सुनाई दे रहा था। "तो आप ऐसा कीजिये," उसने अपनी बात जारी रखी, "कल सुबह आप, जितनी भी जल्दी हो सके, वहां जाइये और अगर कोई जवाब मिले, तो फ़ौरन मुझे उसकी ख़बर दीजिये। आप तो जानते ही हैं कि मैं कहां रहती हूं?" और उसने फिर से मुझे अपना पता बताया।

इसके बाद वह अचानक मेरे प्रति बहुत ही स्नेहशील, बहुत ही विनीत हो गयी... वह मेरी बातों को बहुत ध्यान से सुनती प्रतीत हुई, मगर जब मैंने उससे कोई सवाल किया, तो वह चुप रही, घबरा गयी और उसने मुंह फेर लिया। मैंने उसकी आंखों में झांका – मेरा अनुमान सही निकला – वह रो रही थी।

"हटाइये भी, हटाइये भी! ओह, आप भी कैसी बच्ची हैं! क्या बचपना है यह!.. बस, रहने भी दीजिये इसे!"

उसने मुस्कराने, शान्त होने की कोशिश की, मगर उसकी ठोड़ी कांपती रही, वह गहरी सांसें लेती रही।

"मैं आपके बारे में सोच रही हूं," घड़ी-भर चुप रहने के बाद उसने कहा, "आप इतने अच्छे हैं कि अगर मैं यह अनुभव न करती, तो निरी पत्थर ही होती... जानते हैं कि इस वक़्त मेरे दिमाग़ में क्या ख़याल आया है? मैंने आप दोनों की तुलना की है। काश, उसकी जगह आप

होते! आप जैसा क्यों नहीं है यह? आप उससे बेहतर हैं, यद्यपि मैं उसे आपसे अधिक प्यार करती हूं।"

मैंने जवाब में कुछ भी नहीं कहा। हां, यह लगा कि वह मेरे कुछ कहने की प्रत्याशा में रही।

"बेशक, यह हो सकता है कि मैं अभी उसे पूरी तरह समझती नहीं हूं, अच्छी तरह जानती नहीं हूं। बात यह है कि मैं तो मानो हमेशा उससे डरती रही थी। वह हमेशा ही इतना गम्भीर, मानो घमण्डी-सा रहता था। वैसे निश्चय ही मैं यह जानती हूं कि वह केवल ऐसा प्रतीत होता है, कि उसके हृदय में मुझ से कहीं अधिक कोमलता है... मुझे याद है, जैसा कि मैं आपको बता चुकी हूं, कि जब मैं गठरी लिये हुए उसके पास पहुंची, तो उसने कैसे मेरी ओर देखा था। मगर फिर भी मैं उसकी बहुत ही अधिक इज्जत करती हूं और यह तो ऐसे लगता है मानो हम बराबर के न हों?"

"नहीं, नास्तेन्का, नहीं," मैंने कहा, "इसका मतलब तो यह है कि आप दुनिया में उसी को सब से ज्यादा, ख़ुद अपने से भी ज्यादा प्यार करती हैं।"

"मान लीजिये कि यह ऐसा ही है," भोली-भाली नास्तेन्का बोली, "जानते हैं कि अब क्या विचार मेरे दिमाग़ में आया है? मगर अब मैं उसकी नहीं, आम बात करूंगी। मैं बहुत पहले से ही यह सोचती रही हूं। हम सभी भाइयों जैसे क्यों नहीं हो जाते? अच्छे से अच्छा आदमी हमेशा दूसरों से कुछ छिपाता क्यों है, किसी चीज के बारे में चुप्पी क्यों लगा जाता है? अगर यह बेकार बक-बक नहीं करता, तो जो कुछ उसके दिल में है, फ़ौरन उसे क्यों नहीं कह देता? हर कोई अपने को हक़ीकत से ज्यादा कठोर जाहिर करने की कोशिश करता है मानो डरता हो कि झटपट अपनी भावनायें व्यक्त करके वह उनका अपमान कर देगा..."

"आह, नास्तेन्का! आप सच कह रही हैं, मगर ऐसा तो कई कारणों से होता है," इस क्षण अपनी भावनाओं को इतना अधिक छिपाते हुए, जितना कि पहले कभी नहीं छिपाया था, मैंने उसकी बात काटी।

"नहीं, नहीं!" अत्यधिक भावना-विभोर होकर उसने कहा। "मसलन आप दूसरों जैसे नहीं हैं! मैं सचमुच यह नहीं जानती कि जो कुछ अनुभव कर रही हूं, उसे आपके सामने कैसे व्यक्त करूं, किन्तु मुझे लगता है

कि... बेशक, उदाहरण के लिये... इसी समय... मुझे ऐसा लगता है कि मेरी ख़ातिर आप कुछ बलिदान कर रहे हैं," मुझ पर उड़ती-सी नजर डालकर उसने सहमे-सहमे कहा। "अगर मैं आपसे ऐसे कह रही हूं तो इसके लिये आप मुझे क्षमा कर दीजियेगा – मैं तो सीधी-सादी लड़की हूं, अभी मैंने दुनिया को देखा-जाना ही बहुत कम है और सचमुच कभी-कभी तो अपनी बात भी नहीं कह पाती," उसने किसी गुप्त भावना से कांपती आवाज़ में और साथ ही मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहा। "मगर आपसे केवल इतना कहना चाहती हूं कि इस बात के लिये भी आभारी हूं कि मैं भी यह सब कुछ अनुभव करती हूं... ओह, इसके लिये भगवान आपको सुखी करे! हां, और उस दिन आपने अपने स्वप्नदर्शी के बारे में जो कुछ कहा था, वह सब झूठ है, मेरा मतलब यह है कि आपसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। आप स्वस्थ हो रहे हैं, आपने अपनी जो तस्वीर पेश की थी, आप वास्तव में उससे बिल्कुल भिन्न हैं। अगर आपको कभी किसी से प्यार हो जाये, तो मेरी तो यही कामना है कि भगवान आपको उसके साथ सौभाग्यशाली बनाये! उसके लिये तो मैं किसी भी चीज़ की कामना नहीं करती हूं, क्योंकि मैं जानती हूं कि वह आपके साथ सौभाग्यवती होगी। मैं यह जानती हूं, मैं ख़ुद औरत हूं और अगर मैं ऐसा कहती हूं तो आपको मुझ पर अवश्य विश्वास करना चाहिये..."

वह चुप हो गयी और उसने ज़ोर से मेरा हाथ दबाया। मैं भी भावाभिभूत होने के कारण कुछ न कह सका। कुछ मिनट गुज़र गये।

"हां, लगता है कि वह आज नहीं आयेगा!" सिर ऊपर उठाकर उसने आख़िर कहा। "काफ़ी देर हो चुकी है!.."

"वह कल आयेगा," मैंने बहुत ही विश्वासभरी और दृढ़ आवाज़ में कहा।

"हां," उसने खिलते हुए कहा, "यह तो अब मैं ख़ुद भी देख रही हूं कि वह केवल कल ही आयेगा। तो नमस्ते! कल फिर मिलेंगे! अगर बरसात हुई, तो शायद मैं न आऊं। मगर परसों, चाहे कुछ भी क्यों न हो, मैं ज़रूर आऊंगी। आप अवश्य ही यहां आइयेगा। मैं चाहती हूं कि आप ज़रूर आयें, मैं आपको सब कुछ बताऊंगी।"

विदा होते समय उसने अपना हाथ मेरे हाथ में देते हुए खिले चेहरे से मेरी ओर देखकर कहा –

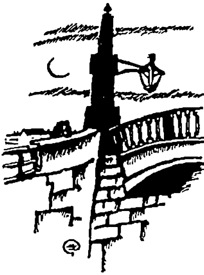
"हम तो अब हमेशा साथ-साथ हैं न?"

ओह, नास्तेन्का! नास्तेन्का! काश तुम्हें मालूम होता कि अब मैं कितनी एकाकी हूं!

जब नौ बजे, तो मेरे लिये कमरे में बैठे रहना दूभर हो गया और मैं बरखा-बूंदी के बावजूद कपड़े पहनकर बाहर चला गया। मैं वहां पहुंचा, हमारी बेंच पर बैठा। मैं उनके कूचे में जा पहुंचा, मगर मुझे शर्म महसूस हुई और उनकी खिड़की तक पर नजर डाले बिना ही उनके घर के बिल्कुल पास से वापस आ गया। मैं ऐसा लुटा-लुटा-सा घर लौटा, जैसा कि पहले कभी नहीं हुआ था। कितनी नमी थी हवा में, कैसा उदासीभरा समय था! अगर मौसम अच्छा होता तो मैं रात-भर वहां घूमता रहता...

मगर कल तक, कल तक इन्तज़ार करना होगा! कल वह मुझे सब कुछ बतायेगी।

ख़त आज नहीं आया। वैसे आना भी नहीं चाहिये था। वे दोनों तो अब एकसाथ हैं...





चौथी रात

हे, भगवान, कैसे अन्त हुआ इस सब का! कैसा अन्त हुआ इस सारे क़िस्से का!

मैं नौ बजे आया। वह वहां पहले से ही मौजूद थी। मैंने उसे दूर से ही देख लिया था। वह पहली बार की भांति घाट के जंगले पर कोहनियां टिकाये हुए खड़ी थी। उसने मेरे पैरों की आहट नहीं सुनी।

"नास्तेन्का!" अपनी उत्तेजना को जैसे-तैसे दबाते हुए मैंने उसे पुकारा।

वह जल्दी से मेरी ओर घूमी।

"तो," वह बोली, "तो! जल्दी कीजिये न!"

मैं उसका मुंह ताकता हुआ खड़ा रह गया।

"तो, कहां है ख़त! लाये ख़त?" जंगले को हाथ से थामते हुए उसने पूछा।

"ख़त, मेरे पास ख़त नहीं है," आख़िर मैंने कहा। "तो क्या वह अभी तक नहीं आया?"

एकदम उसके चेहरे का रंग उड़ गया और देर तक वह मुझे एकटक देखती रही। मैंने उसकी आख़िरी उम्मीद तोड़ डाली थी।

"नहीं, तो न सही!" आख़िर उसने टूटती-सी आवाज़ में कहा। "अगर वह इसी तरह से मुझे ठुकराये दे रहा है, तो ऐसा ही सही।"

उसने नज़र झुका ली, कुछ क्षण बाद मेरी ओर देखना चाहा, मगर ऐसा न कर सकी। कुछ और देर तक उसने मन के तूफ़ान पर क़ाबू पाने

की कोशिश की, मगर फिर अचानक मुंह फेर लिया और घाट के जंगले का सहारा लेकर आंसुओं की झड़ी लगा दी।

"बस करो, बस करो!" मैंने कहना शुरू किया, मगर उसकी हालत देखते हुए मैं अपनी बात जारी न रख सका। मगर मैं कहता भी, तो क्या?

"मुझे तसल्ली नहीं दीजिये," उसने रोते हुए कहा, "उसके बारे में कुछ नहीं कहियेगा, यह नहीं कहियेगा कि वह आयेगा, कि उसने मुझे ऐसे क्रूर, ऐसे अमानुषी ढंग से नहीं ठुकराया है, जैसा कि उसने किया है। मगर क्यों? किसलिये? क्या मेरे ख़त में, मेरे उस किस्मत के मारे ख़त में कोई ऐसी बात थी?.."

यहां उसका गला सिसकियों से रुंध गया। उसे देखते हुए मेरा कलेजा मुंह को आता था।

"ओह, कैसी अमानुषी क्रूरता है यह!" उसने फिर से कहना शुरू किया। "एक पंक्ति, एक पंक्ति तक नहीं! और कुछ नहीं, तो इतना ही लिख देता कि उसे मेरी ज़रूरत नहीं है, कि वह मुझसे नाता तोड़ता है। मगर पूरे तीन दिनों में एक पंक्ति भी नहीं! कितना आसान है उसके लिये एक ग़रीब और असहाय लड़की का अपमान करना, उसके दिल को ठेस लगाना, जिसका सिर्फ़ यही अपराध है कि वह उसे प्यार करती है! ओह, कितना कुछ सहा है मैंने इन तीन दिनों में। हे भगवान, हे भगवान! मुझे याद आता है कि कैसे मैं पहली बार उसके पास गई थी, कैसे मैंने अपने आप को नीचे गिराया था, रोई-गिड़गिड़ाई थी, ज़रा-से प्यार की भीख मांगी थी... और इस सब कुछ के बाद यह!.. मगर सुनिये," उसने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा और उसकी काली आंखें चमक उठीं, "नहीं, ऐसा कुछ नहीं है! ऐसा हो ही नहीं सकता, यह सब अस्वाभाविक है! या तो आपसे, या फिर मुझसे कोई भूल हुई है। मुमकिन है कि उसे अभी तक ख़त ही न मिला हो? मुमकिन है कि वह अभी तक कुछ जानता ही न हो? आप ख़ुद ही सोचिये, बताइये मुझे, भगवान के लिये समझाइये मुझे, क्योंकि मेरी समझ में यह बात नहीं आ रही, कि कैसे कोई ऐसा बर्बर व्यवहार कर सकता है, जैसा उसने मेरे साथ किया है! एक शब्द तक नहीं! बुरे से बुरे व्यक्ति के साथ भी अधिक सहानुभूति बरती जाती है। हो सकता है कि उसने मेरे बारे में कुछ भला-बुरा सुना हो, हो सकता

है कि किसी ने मेरे ख़िलाफ़ उसके कान भर दिये हों?" मुझसे प्रश्न करते हुए वह चिल्लाई। "क्या ख़याल है, क्या ख़याल है आपका?"

"सुनिये, नास्तेन्का, मैं आपकी ओर से कल उसके पास जाऊंगा।"

"फिर?"

"मैं उससे सब कुछ पूछूंगा, उसे सब कुछ बताऊंगा।"

"फिर, फिर!"

"आप मुझे ख़त लिख दीजियेगा। इन्कार नहीं कीजियेगा, नास्तेन्का, इन्कार नहीं कीजियेगा! मैं उसे आपके व्यवहार का सम्मान करने को विवश करूंगा। उसे सब कुछ मालूम हो जायेगा और अगर..."

"नहीं, मेरे दोस्त, नहीं," उसने मुझे टोका, "बस, काफी हो चुका! एक शब्द, एक भी शब्द, एक भी पंक्ति मैं अब नहीं लिखूंगी। बस, बहुत हो चुका। मैं उसे नहीं जानती, मैं अब उसे प्यार नहीं करती, मैं उसे भूल जा-ऊं-गी..."

वह अपनी बात पूरी नहीं कर पाई।

"शान्त हो जाइये, शान्त हो जाइये! बैठ जाइये यहां, नास्तेन्का," उसे बेंच पर बिठाते हुए मैंने कहा।

"मैं शान्त हूं। बस! यह तो सब ऐसे ही है। ये आंसू, ये तो सूख जायेंगे। आप क्या सोचते हैं कि मैं अपनी जान दे दूंगी, डूब मरूंगी?.."

मेरा दिल भरा हुआ था। मैंने कुछ कहना चाहा, मगर कह न सका।

"सुनिये!" मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर वह कहती गई, "कहिये, आप तो ऐसा न करते न? आप तो ख़ुद ही आपके पास आ जानेवाली को न ठुकराते, आप तो उसके भावुक, उसके पागल दिल का ढिठाई से उपहास न उड़ाते? आप तो उसे सहेज लेते न? आप तो इस बात को ध्यान में रखते कि वह एकाकी है, कि वह अपने को वश में नहीं रख सकी, कि वह अपने को आपके प्यार की लपट से न बचा सकी, कि वह दोषी नहीं है, कि वह अपराधी नहीं है... कि उसने कोई भी तो क़ुसूर नहीं किया है!.. हे भगवान, हे भगवान..."

"नास्तेन्का!" अपनी भावनाओं की ज्वार पर क़ाबू न पाते हुए आख़िर मैं चिल्ला उठा। "नास्तेन्का! आप मेरे दिल के टुकड़े-टुकड़े किये दे रही हैं! आप मेरे दिल में ज़हर उंडेल रही हैं, मेरी हत्या कर रही

हूं, नास्तेन्का! मैं चुप नहीं रह सकता! आखिर मुझे बोलना ही होगा, वह कहना ही होगा, जो मेरे इस दिल में भरा हुआ है..."

यह कहते हुए मैं बेंच से उठकर खड़ा हो गया। उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया और हैरानी से मेरी ओर देखती रह गई।

"यह क्या हुआ है आपको?" आखिर उसने पूछा।

"सुनिये!" मैंने दृढ़तापूर्वक कहा। "मेरी बात सुनिये, नास्तेन्का! मैं अब जो कुछ कहूंगा, वह सब बकवास है, हवाई क़िला है, बेसिरपैर की बात है। मैं जानता हूं कि यह सब कुछ कभी हकीकत नहीं बन सकता, मगर मैं चुप भी नहीं रह सकता। जिस कारण आप अब यातना सह रही हैं, उसी के नाम पर मैं पहले से ही मुझे क्षमा कर देने का आपसे अनुरोध करता हूं!.."

"मगर कुछ कहिये तो!" उसने रोना बन्द करके मुझे एकटक देखते हुए कहा। उसकी आश्चर्यचकित आंखों में एक अजीब-सी जिज्ञासा चमक रही थी, "आपको यह हुआ क्या है?"

"यह सपना, झूठा सपना ही रहेगा, मगर मैं आपको प्यार करता हूं, नास्तेन्का! समझीं! बस, सब कुछ कह चुका!" मैंने हाथ झटककर कहा। "अब आप ही तय करें कि क्या उसी तरह मुझसे बातचीत कर सकती हैं, जैसे अभी तक कर रही थीं, क्या वह सब कुछ सुन सकती हैं जो मैं आपसे कहूंगा..."

"मगर इसमें ऐसी बात ही कौन-सी है?" नास्तेन्का ने मुझे टोका। "क्या फ़र्क पड़ता है इससे? मैं तो बहुत पहले से ही यह जानती थी कि आप मुझसे प्यार करते हैं। किन्तु मुझे लगता था कि आप कुछ ऐसे ही, योंही मामूली तौर पर मुझे प्यार करते हैं... हे भगवान, हे भगवान!"

"शुरू में तो कुछ ऐसे ही था, मगर अब, अब... अब मेरी बिल्कुल वही हालत है, जैसी आपकी उस समय थी, जब आप अपनी गठरी लेकर उसके पास गई थीं। मेरी हालत आपसे ज्यादा खराब है, नास्तेन्का, क्योंकि उस समय उसे किसी से प्यार नहीं था, मगर आप प्यार करती हैं।"

"यह आप मुझसे क्या कह रहे हैं! मैं तो आपको बिल्कुल नहीं समझ पा रही हूं। मगर सुनिये तो, यह सब किसलिये है, मेरा मतलब, किसलिये नहीं, बल्कि क्यों आपने यह... और वह भी ऐसे अचानक... हे भगवान! मैं ऊल-जलूल बातें कह रही हूं! मगर आप..."

नास्तेन्का बिल्कुल परेशान हो उठी। उसके गालों पर लालिमा दौड़ गई, उसने नज़र झुका ली।

"मैं क्या करूं, नास्तेन्का, मैं क्या करूं! मैं अपराधी हूं, मैंने यह बहुत बुरा किया... मगर नहीं, नहीं, मैं अपराधी नहीं हूं, नास्तेन्का! मैं यह देख रहा हूं, अनुभव कर रहा हूं, क्योंकि मेरा दिल मुझसे कह रहा है कि मैंने ठीक किया है, क्योंकि मैं किसी तरह भी आपके दिल को ठेस नहीं पहुंचा सकता। मैं आपका अपमान नहीं कर सकता। मैं आपका दोस्त था, अब भी हूं। किसी तरह का भी आपसे विश्वासघात नहीं किया मैंने। देखिये, अब मेरे आंसू बहे जा रहे हैं। बहते हैं, तो बहते रहें—किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते हैं। ये सूख जायेंगे, नास्तेन्का..."

"आप बैठ जाइये, बैठ जाइये," मुझे बेंच पर बैठाने की कोशिश करते हुए उसने कहा। "ओह, मेरे भगवान!"

"नहीं! मैं नहीं बैठूंगा, नास्तेन्का। मैं अब यहां और नहीं ठहर सकता, मैं आपसे फिर कभी नहीं मिलूंगा। मैं सब कुछ कहकर चला जाऊंगा। मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूं कि आपको कभी यह पता न चलता कि मैं आपसे प्यार करता हूं। मैं अपने रहस्य को छिपाये रखता। अब, ऐसे क्षण में, अपनी स्वार्थता से मैं आपका दिल न दुखाता। नहीं! मगर अब मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता था। आपने ख़ुद ही इसकी चर्चा कर दी, आप ही दोषी हैं, यह सब आप ही का दोष है, मैं दोषी नहीं हूं। आप मुझे दुतकार नहीं सकतीं..."

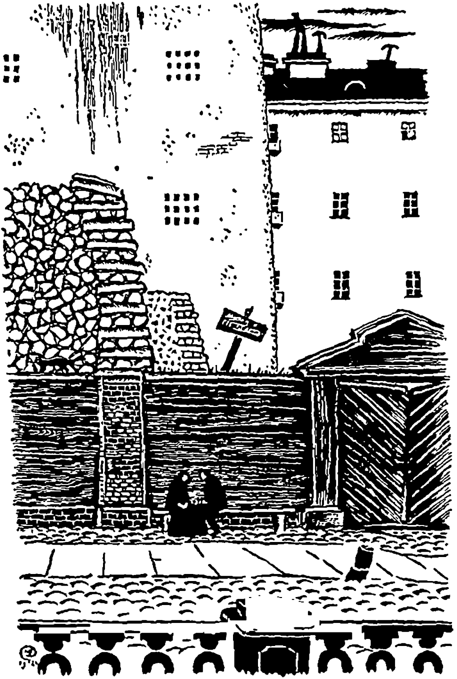
"नहीं, नहीं, मैं आपको नहीं दुतकारूंगी!" अपनी परेशानी को जैसे-तैसे छिपाते हुए बेचारी नास्तेन्का ने कहा।

"आप मुझे नहीं दुतकारेंगी न? नहीं, न? मगर मैं ख़ुद आप से दूर भाग जाना चाहता था। और मैं भाग भी जाऊंगा, मगर पहले आपको सब कुछ बता दूंगा। कारण कि जब आप यहां अपनी बात कह रही थीं तो मैं बड़ी मुश्किल से वह सहन कर पा रहा था, जब आप यहां रो रही थीं, जब आप इस बात से बेहद दुःखी हो रही थीं, इस बात से, (अब मैं उसे कह ही दूंगा, नास्तेन्का), इस बात से कि आपको ठुकराया जा रहा है, कि आपके प्यार की उपेक्षा की जा रही है, तो मैंने अनुभव किया, मैंने देखा कि मेरे दिल में आपके लिये कितना अधिक प्यार है, नास्तेन्का, कितना अधिक! .. और इस बात से मेरा दिल ख़ून के आंसू रो दिया

कि अपने इस प्यार से मैं आपकी कोई मदद नहीं कर सकता... मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े होने लगा और मैं, मैं चुप नहीं रह सकता। मुझे बोलना पड़ा, नास्तेन्का, मुझे बोलना ही पड़ा! .."

"हां, हां। कहते जाइये, मुझसे ऐसे ही कहते जाइये!" एक अनबूझ से उत्साह के साथ नास्तेन्का ने कहा। "शायद आपको यह अजीब-सा लग रहा होगा कि मैं आपसे ऐसा कह रही हूं, मगर... कहते जाइये! मैं आपसे बाद में अपनी बात कहूंगी। सब कुछ बताऊंगी आपको!"

"आपको मेरे लिये दुःख हो रहा है, नास्तेन्का, मेरे लिये आपको दुःख हो रहा है न, मेरी प्यारी-सी मित्र! जो होना था, वह हो चुका। जो जबान से निकल गया, वह लौटाया नहीं जा सकता। ऐसे ही है न? तो अब आप सब कुछ जानती हैं। तो यही हमारा आरम्भबिन्दु है। यह अच्छा है! अब सब कुछ बहुत खूब है, लेकिन पूरी तरह मेरी बात सुन लीजिये। जब आप बैठी हुई रो रही थीं, तो मैंने मन ही मन सोचा (ओह, मुझे कहने दीजिये कि मैंने क्या सोचा था), मैंने सोचा कि (हां, यह तो जाहिर ही है कि ऐसा नहीं हो सकता, नास्तेन्का), मैंने सोचा कि आप... मैंने सोचा कि आप किसी... मेरा मतलब, किसी दूसरे वस्तुगत कारण से अब उसे प्यार नहीं करतीं। तब – कल और परसों मैं यही सोचता रहा, नास्तेन्का, – तब मैं कुछ ऐसा करता, मैं अवश्य ही कुछ ऐसा करता कि आप मुझे प्यार करने लगतीं – आपने तो खुद ही मुझसे यह कहा था, नास्तेन्का, कि आपको मुझसे लगभग प्यार हो गया है। तो, मुझे और क्या कहना है? बस, लगभग यह सब कुछ कह दिया, जो मैं कहना चाहता था। सिर्फ़ इतना ही कहना बाकी रह गया है कि अगर आपको मुझसे प्यार हो जाता, तब क्या होता – सिर्फ़ इतना ही, और कुछ नहीं। सुनिये तो, मेरी मित्र, – क्योंकि आप मित्र तो मेरी हैं ही – मैं बेशक मामूली, गरीब, बहुत छोटा-सा आदमी हूं (लगता है कि मैं बहक रहा हूं, यह मेरी घबराहट का नतीजा है, नास्तेन्का), मगर मैं आपको ऐसे, ऐसे प्यार करता कि अगर आप उसे भी प्यार करती होतीं, उसे भी प्यार करती जातीं, जिसे मैं नहीं जानता, तो आपको यह कभी महसूस न होता कि मेरा प्यार आपके लिये किसी तरह का बोझ है। आपको केवल ऐसा लगता, हर क्षण केवल यही अनुभूति होती कि आपके निकट कृतज्ञ,



एक कृतज्ञ हृदय, एक उत्तप्त हृदय धड़क रहा है, जो आपके लिये... ओह, नास्तेन्का, नास्तेन्का! क्या कर दिया है आपने यह मेरे साथ! ..."

"रोइये नहीं, मैं नहीं चाहती कि आप रोयें," बेंच से झटपट उठते हुए नास्तेन्का ने कहा। "आइये चलें, उठिये, मेरे साथ चलिये, रोइये नहीं, नहीं रोइये," अपने रूमाल से मेरे आंसू पोंछते हुए वह बोली, "तो आइये, अब चलें। हो सकता है कि मैं आपसे कुछ कहूं... हां, अब, जब कि उसने मुझे ठुकरा दिया है, जब कि वह मुझे भूल गया है, गो मैं अभी भी उसे प्यार करती हूं (आपको धोखा देना नहीं चाहती)... मगर, कहिये तो, मुझे जवाब दीजिये। अगर मैं, मिसाल के तौर पर, आपको प्यार करने लगती, मेरा मतलब, अगर केवल मैं... ओह, मेरे दोस्त, दोस्त मेरे। जब मुझे यह याद आता है, जब मैं यह याद करती हूं कि मैंने इस चीज़ के लिये आपकी तारीफ़ की थी कि आपको मुझसे प्यार नहीं हुआ, तो मैंने आपके दिल को बहुत दुःख पहुंचाया था, आपके प्यार की खिल्ली उड़ाई थी! .. हे भगवान! क्यों मैंने इसका अनुमान नहीं लगाया, क्यों इसे नहीं भांपा? क्यों मैं इतनी बुद्धू रही, मगर ... हां, हां, मैंने सब कुछ कहने का निर्णय कर लिया है..."

"जानती हैं, नास्तेन्का, मैं आपसे क्या कहना चाहता हूं? यही कि मैं आपको छोड़कर जा रहा हूं! मैं आपको केवल यातना ही दे रहा हूं। अब आप अपने को इसलिये धिक्कारने लगी हैं कि आपने मेरी खिल्ली उड़ाई थी। मैं नहीं चाहता, हां, मैं बिल्कुल नहीं चाहता कि आप अपने दुःख के अलावा और... हां, मैं ही दोषी हूं, नास्तेन्का, नमस्ते।"

"ज़रा रुकिये, मेरी बात सुनिये – आप थोड़ा इन्तज़ार कर सकते हैं?"

"इन्तज़ार, किस चीज़ का?"

"मैं उसे प्यार करती हूं, मगर यह प्यार मर जायेगा, इसे मरना ही चाहिये, यह मरे बिना रह ही नहीं सकता। मैं महसूस कर रही हूं कि यह दम तोड़ रहा है... कौन जाने, यह आज ही दम तोड़ दे, क्योंकि मैं उससे नफ़रत करती हूं, क्योंकि उसने मेरा मज़ाक़ उड़ाया, जब कि आपने मेरे साथ यहां आंसू बहाये, क्योंकि आपने उसकी भांति मुझे ठुकराया न होता, क्योंकि आप मुझे प्यार करते हैं, जबकि वह मुझे प्यार नहीं करता था, क्योंकि मैं ख़ुद भी आपको प्यार करती हूं... हां, प्यार करती हूं! उसी तरह प्यार करती हूं जैसे आप मुझसे। मैं तो पहले ही ख़ुद आपसे यह

कह चुकी हूं, आप तो यह सुन ही चुके हैं। मैं इसलिये प्यार करती हूं आपसे कि आप उससे अच्छे हैं, क्योंकि आप उससे अधिक भले हैं, क्योंकि, क्योंकि वह..."

उस बेचारी का भावनाओं का तूफ़ान इतना तेज़ था कि वह अपनी बात पूरी नहीं कर पाई। उसने अपना सिर मेरे कंधे, फिर मेरी छाती पर रख दिया और फूट-फूटकर रो पड़ी। मैंने उसे शान्त किया, चुप कराया, मगर उसके आंसू नहीं रुके। वह लगातार मेरा हाथ दबाते हुए सिसकियों के बीच कहती गयी–"ज़रा रुकिये, ज़रा रुकिये, मैं अभी चुप हो जाऊंगी मैं आपसे कहना चाहती हूं... आप यह नहीं सोचियेगा कि ये आंसू... यह तो ऐसे ही हैं, मेरी कमज़ोरी का नतीजा हैं, थोड़ा सब्र कीजिये, अभी रुक जायेंगे..." आखिर उसने रोना बन्द किया, आंसू पोंछे और हम फिर से आगे चल दिये। मैंने कुछ कहना चाहा, मगर वह देर तक मुझसे चुप रहने का ही अनुरोध करती रही। हम ख़ामोश रहे... आख़िर उसने अपना मन कड़ा करके कहना शुरू किया...

"मैं कहना चाहती हूं," उसने भरी-सी और कांपती आवाज़ में आरम्भ किया, किन्तु उसमें अचानक कुछ ऐसा झनझना उठा कि वह सीधा मेरे दिल में उतर गया और वहां मीठा-मीठा दर्द होने लगा, "यह नहीं सोचियेगा कि मैं ऐसी ढुलमुल, ऐसी चंचल हूं, यह नहीं सोचियेगा कि मैं इतनी आसानी से और इतनी जल्दी भूल सकती हूं, बेवफ़ाई कर सकती हूं... मैं साल-भर उसे प्यार करती रही और भगवान की कसम खाकर कहती हूं कि कभी भी, ख़्याल तक में भी मैंने उसके साथ बेवफ़ाई नहीं की। उसने इसका तिरस्कार किया, मेरा मज़ाक़ उड़ाया–जैसी उसकी इच्छा! मगर उसने मेरे दिल पर चोट की है, वहां नासूर बना दिया है। मैं–मैं उसे प्यार नहीं करती, क्योंकि मैं केवल उसे ही प्यार कर सकती हूं जो दिल का बड़ा है, जो मुझे समझता है, जिसमें भलमनसाहत है, कारण कि मैं ख़ुद भी ऐसी हूं और वह मेरे लायक़ नहीं है–पर, ख़ैर! मगर उसने यह अच्छा ही किया। बाद में उसका असली रूप सामने आने पर मुझे कहीं अधिक निराशा होती... बस, सब कुछ ख़त्म हो गया! मगर कौन जाने, मेरे अच्छे दोस्त," मेरा हाथ दबाते हुए वह कहती गई, "कौन जाने, शायद मेरा यह प्यार भावनाओं की मृगछलना ही हो, मेरी कल्पना ही हो, हो सकता है कि यह केवल शरारत के रूप में, ऐसे ही छुटपुट से,

इसलिये शुरू हुआ हो कि मैं नानी के पास से उठ ही नहीं सकती थी? शायद उसे नहीं, किसी दूसरे को, ऐसे व्यक्ति को नहीं, बल्कि किसी दूसरे को मुझे प्यार करना चाहिये, जो मुझ पर दया करे और, और... खैर, हटाइये, हटाइये इस बात को," उत्तेजना से हांफते हुए वह अपनी बात पूरी न कर पाई, "मैं आपसे केवल इतना कहना चाहती थी... मैं आपसे कहना चाहती थी कि अगर इस चीज़ के बावजूद कि मैं उसे प्यार करती हूं (नहीं, प्यार करती थी), अगर इसके बावजूद, आप फिर से यह कहेंगे... अगर आप यह अनुभव करते हैं कि आपका प्यार इतना ऊंचा है कि वह मेरे हृदय से पहले प्यार को निकाल सकता है... अगर आप मुझ पर दया करना चाहते हैं, अगर आप मुझे सान्त्वना और आशा के बिना, मेरे भाग्य पर अकेली ही नहीं छोड़ देना चाहते, अगर आप मुझे सदा ही इसी तरह प्यार करना चाहेंगे, जैसे अब करते हैं, तो क़सम खाकर कहती हूं कि मेरी कृतज्ञता... कि मेरा प्यार आपके प्यार के योग्य होगा... क्या अब आप मेरा हाथ थामने को तैयार हैं?"

"नास्तेन्का," सिसकियों से रुंधे जाते कण्ठ के साथ मैं चिल्ला उठा, "नास्तेन्का!.. ओ नास्तेन्का!.."

"बस, काफ़ी है, काफ़ी है। अब बहुत काफी है!" उसने बड़ी मुश्किल से कहा। "अब सब कुछ कहा जा चुका। ठीक है न? ऐसे ही है न? अब आप भी सौभाग्यशाली हैं और मैं भी। इसके बारे में अब एक भी शब्द नहीं कहिये, रुक जाइये; मुझ पर दया कीजिये... भगवान के लिये किसी और बात की चर्चा कीजिये!.."

"हां, नास्तेन्का, हां! इसके बारे में अब काफ़ी है। मैं अब सौभाग्यशाली हूं, मैं...हां, नास्तेन्का, हां, हम किसी और बात की चर्चा करेंगे, अभी, अभी चर्चा करेंगे, हां! मैं तैयार हूं..."

मगर हमारी समझ में नहीं आया कि हम क्या बात करें। हम हंसे, रोये, हमने हज़ारों असम्बद्ध और बेमानी शब्द कहे। हम कभी तो पटरी पर चलते, तो कभी अचानक पीछे लौटते और सड़क को पार करते, इसके बाद रुकते और फिर से घाट पर लौट आते। हम तो मानो दो बच्चे थे...

"इस वक़्त मैं अकेला रह रहा हूं, नास्तेन्का," मैंने कहना शुरू किया, "मगर कल... बेशक यह सही है, नास्तेन्का, कि मैं ग़रीब आदमी हूं,

सिर्फ़ एक हज़ार दो सौ सालाना पाता हूं, मगर यह तो कोई बात नहीं है..."

"ज़ाहिर है कि कोई बात नहीं है। नानी को पेंशन मिलती है, इसलिये वह हम पर बोझ नहीं बनेगी। नानी को हमें अपने साथ रखना चाहिये।"

"हां, हां, नानी को हमें अपने साथ रखना चाहिये... मगर वह माव्योना..."

"हां, और हमारी फ़्योक्ला भी तो है!"

"माव्योना भली है, सिर्फ़ उसमें एक कमी है– कल्पना नहीं है उसके पास, नास्तेन्का, तनिक भी कल्पना नहीं है। पर यह तो कोई बात नहीं है न!.."

"कोई बात नहीं। वे दोनों एक साथ रह लेंगी। लेकिन आप कल हमारे यहां आकर बस जाइये!"

"क्या मतलब है आपका? आपके यहां! अच्छी बात है, मैं तैयार हूं..."

"हां, आप हमारे किरायेदार बन जाइये। हमारे यहां, ऊपर एक अटारी है, वह ख़ाली है। एक कुलीन बुढ़िया उसमें रहती थी, पर वह अब चली गयी। मैं जानती हूं कि नानी किसी जवान आदमी को वहां बसाना चाहती है। मैं पूछती हूं– 'जवान आदमी किसलिये?' और वह जवाब देती है–'ऐसे ही, मैं तो बूढ़ी हो गयी, मगर तुम यह मत समझना, नास्तेन्का, कि मैं तुम्हारे लिये कोई पति ढूंढ़ना चाहती हूं।' और मैं भांप गयी कि वह यही चाहती है..."

"आह, नास्तेन्का!"

और हम दोनों हंस पड़े।

"बस, काफ़ी है, काफ़ी है। आप रहते कहां हैं? मैं तो भूल ही गई।"

"वहां, पुल के पास बारान्नीकोव के घर में।"

"वह, जो बड़ा-सा घर है?"

"हां, वही जो बड़ा-सा घर है।"

"ओह, मैं जानती हूं, अच्छा घर है वह। लेकिन आप उसे छोड़कर जल्दी से हमारे यहां आ जाइये..."

"कल ही आ जाऊंगा, नास्तेन्का, कल ही। मुझे वहां थोड़ा-सा किराया देना है, मगर यह कोई बात नहीं... जल्दी ही मुझे वेतन मिलनेवाला है..."

"हां, मैं शायद ट्यूशन करने लगूं। पहले ख़ुद पढ़ूंगी और फिर दूसरों को पढ़ाया करूंगी..."

"यह तो बहुत ही अच्छा रहेगा... और मुझे जल्द ही अच्छे काम का इनाम मिलनेवाला है, नास्तेन्का.."

"तो आप कल ही मेरे किरायेदार बन जायेंगे..."

"हां, और हम 'सेविले का नाई' आपेरा देखने चलेंगे। जल्द ही वह फिर से प्रस्तुत किया जायेगा।"

"हां, चलेंगे," नास्तेन्का ने हंसते हुए कहा, "नहीं, हम 'नाई' नहीं कुछ और देखने चलेंगे..."

"अच्छी बात है, कुछ दूसरा ही सही। हां, यह ज़्यादा अच्छा रहेगा, मुझे तो ध्यान ही नहीं आया कि..."

ऐसे बातें करते हुए हम तो मानो नशे में, मानो अपनी सुध-बुध भूले हुए घूम रहे थे, मानो ख़ुद ही यह नहीं जानते थे कि हमारे साथ क्या हो रहा था। तो हम रुककर एक ही जगह पर खड़े हुए बातें करते रहते, तो फिर से चलना शुरू कर देते और भगवान ही जाने कि कहां पहुंच जाते। फिर-फिर हंसते, फिर-फिर आंसू बहाते... तो अचानक नास्तेन्का घर जाने को कहती, मेरी रोकने की हिम्मत न होती और मैं उसे घर तक पहुंचाने को तैयार हो जाता। हम चल देते और कोई पन्द्रह मिनट बाद फिर से घाट पर अपनी बेंच के पास ही अपने को पाते। तो कभी वह गहरी सांस लेती और आंसू की बूंदें उसकी आंखों में फिर से झलक उठतीं। मैं सहम जाता, मेरे प्राण सूखे जाते... मगर वह इसी क्षण मेरा हाथ दबाती और फिर से चलने-फिरने, बोलने-बतियाने के लिये मुझे अपने साथ खींच ले चलती...

"अब मुझे घर चलना चाहिये, चलना ही चाहिये। मेरे ख़्याल में तो बहुत ही देर हो चुकी है," नास्तेन्का ने आख़िर कहा, "काफ़ी बचपना हो चुका!"

"हां, नास्तेन्का, लेकिन अब मुझे तो नींद नहीं आयेगी। मैं घर नहीं जाऊंगा।"

"लगता है कि नींद तो मुझे भी नहीं आयेगी, लेकिन आप मुझे पहुंचा दीजिये..."

"चलिये!"

"इस बार तो हम अवश्य ही घर जायेंगे।"

"अवश्य, अवश्य ही..."

"वादा करते हैं न?.. आख़िर कभी तो घर लौटना ही होगा!"

"वादा करता हूं," मैंने हंसते हुए जवाब दिया...

"तो चलें!"

"चलिये।"

"आकाश पर नज़र डालिये, नास्तेन्का, आकाश पर! कल बहुत ही सुहावना दिन होगा। कैसा नीलाकाश है, कैसा चांद है! देखिये तो–यह पीला बादल अब चांद को ढंकने जा रहा है, देखिये, देखिये!.. नहीं, यह पास से गुज़र गया। देखिये तो, देखिये तो!.."

मगर नास्तेन्का बादल को नहीं देख रही थी। वह तो चुपचाप ऐसे खड़ी थी मानो उसे काठ मार गया हो। घड़ीभर बाद वह सहम गयी, मुझसे सट गई। मेरे हाथ में उसका हाथ कांप रहा था। मैंने उस पर नज़र डाली... वह मुझसे और अधिक चिपक गई।

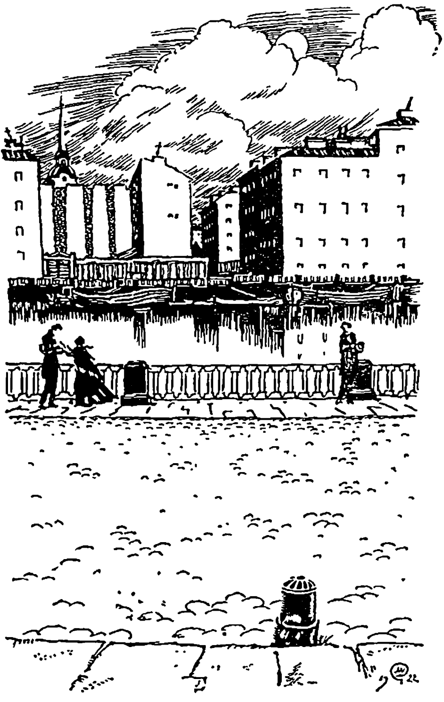
इसी क्षण एक जवान आदमी हमारे पास से गुज़रा। वह अचानक रुका, टकटकी बांधकर हमें देखता रहा और फिर कुछ क़दम और आगे बढ़ गया। मेरा दिल कांप उठा...

"नास्तेन्का," मैंने दबी आवाज़ में पूछा, "यह कौन है, नास्तेन्का?"

"यह वही है!" उसने फुसफुसाकर जवाब दिया, और पहले से भी अधिक कांपती हुई मेरे साथ और भी अधिक चिपक गई... मेरी टांगें जवाब दिये जा रही थीं...

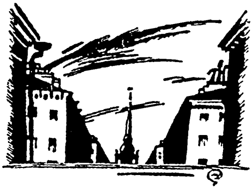
"नास्तेन्का! नास्तेन्का! यह तुम हो!" हमारे पीछे ये शब्द सुनाई दिये और इसी क्षण वह जवान आदमी हमारी ओर बढ़ आया...

हे भगवान, वह कैसे चीख़ी! वह कैसे कांपी! कैसे वह मेरी बाहों से निकलकर उसकी तरफ़ लपकी!.. मैं तो बेजान-सा खड़ा हुआ उन्हें देखता रहा। मगर वह उसके हाथ में अपना हाथ देते ही, उसकी बाहों में आते ही अचानक फिर से मेरी तरफ़ मुड़ी, हवा की तरह, बिजली की तरह मेरे पास आ पहुंची और इसके पहले कि मैं कुछ समझ पाता, उसने



ग्रपने दोनों हाथ मेरे गले में डाल दिये ग्रौर बहुत जोर से, बहुत कसकर मुझे चूमा। इसके बाद मुझसे एक भी शब्द कहे बिना वह फिर से उसकी ग्रोर लपकी ग्रौर उसके हाथ पकड़कर उसे ग्रपने साथ खींच ले चली।

मैं देर तक खड़ा हुग्रा उस ग्रादमी को देखता रहा... ग्राख़िर वे दोनों मेरी नज़र से ग्रोझल हो गये।





सुबह

सुबह मेरी रातों का अन्त बनी। दिन बुरा था। पानी बरस रहा था और मेरे शीशे पर उदासी भरी टपटप हो रही थी। मेरे छोटे-से कमरे में अन्धेरा था, बाहर बादल छाये हुए थे। मेरे सिर में दर्द था, वह चकरा रहा था। बुख़ार चुपके-चुपके मेरे अंगों को अपने चुंगल में लेता जाता था।

"मालिक, तुम्हारे लिये शहरी डाक से ख़त आया है, डाकिया लाया है," मेरे पीछे खड़ी हुई मात्र्योना ने कहा।

"ख़त! किसका है?" कुर्सी से उछलकर खड़े होते हुए मैंने पूछा।

"मैं नहीं जानती, मालिक, देख लो, शायद वहां ही लिखा हो कि किसने भेजा है।"

मैंने लिफ़ाफ़ा खोला। यह उसी का ख़त था!

"ओह, मुझे माफ़ कीजिये, माफ कीजिये मुझे!" नास्तेन्का ने लिखा था, "आपके पांवों पड़ती हूं, मुझे माफ कीजिये! मैंने आपको भी धोखा दिया और अपने को भी। वह सपना था, छाया थी... मैं आज आपके लिये बहुत दुःखी होती रही। माफ़ कीजिये, मुझे माफ़ कीजिये!..

"मुझे दोष नहीं दीजियेगा, क्योंकि मैं आपके प्रति जरा भी तो नहीं बदली हूं। मैंने कहा था कि मैं आपको प्यार करूंगी और मैं अब भी आपको प्यार करती हूं, प्यार से भी कुछ बढ़कर। हे भगवान! काश, मैं आप दोनों को एकसाथ ही प्यार कर सकती! ओह, काश आप, उसकी जगह होते!"

"ओह, काश वह आपकी जगह होता!" मेरे दिमाग़ में ये शब्द कौंध गये। मुझे तुम्हारे ही शब्द याद आ गये हैं, नास्तेन्का!

"भगवान साक्षी है कि अब मैंने आपके लिये क्या कुछ किया होता! मैं जानती हूं कि आप पर बहुत भारी गुज़र रही है और आप बहुत उदास हैं। मैंने आपका दिल दुखाया है, मगर आप तो जानते हैं कि अगर प्यार हो, तो नाराज़गी जल्दी ही दूर हो जाती है। और आप मुझे प्यार करते हैं!

"मैं आपकी आभारी हूं! हां! इस प्यार के लिये आपकी आभारी हूं, क्योंकि मेरी स्मृति में यह एक ऐसे मधुर सपने की तरह अंकित होकर रह गया है, जिसकी जागने के बाद देर तक याद बनी रहती है, क्योंकि मैं जीवन-भर उस क्षण को याद रखूंगी, जब आपने भाई की तरह अपना दिल खोलकर मेरे सामने रख दिया था और बड़ी उदारता से मेरे टुकड़े-टुकड़े हुए दिल को उपहारस्वरूप स्वीकार कर लिया था ताकि उसे सहेजें, उसे दुलरायें, उसे नया जीवन दें... अगर आप मुझे क्षमा कर देंगे, तो मेरे हृदय में आपकी याद शाश्वत कृतज्ञता की भावना बनकर रह जायेगी... मैं इस स्मृति को संजोये रहूंगी, इसके प्रति निष्ठा बनाये रहूंगी, विश्वासघात नहीं करूंगी, अपने हृदय के साथ, जो बहुत ही स्थिर है, छल नहीं करूंगी। वह तो कल फ़ौरन ही उसके पास लौट गया, जिसका सदा-सदा के लिये हो चुका है।

"हम मिलेंगे, आप हमारे यहां आयेंगे, हमसे मुंह नहीं मोड़ियेगा, आप हमारे चिरमित्र होंगे, मेरे भाई होंगे... और जब हमारी भेंट होगी, तो आप मुझे अपना हाथ देंगे... ठीक है न? आप मुझे अपना हाथ देंगे, आपने मुझे माफ़ कर दिया, ठीक है न? आप मुझे प ह ले की त र ह ही प्यार करते हैं न?

"ओह, मुझे प्यार कीजिये, मुझसे नाता नहीं तोड़िये, क्योंकि मैं इस वक़्त आपको इतना अधिक प्यार करती हूं, क्योंकि मैं आपके प्यार के योग्य हूं, क्योंकि मैं आपके प्यार के योग्य बनूंगी... मेरे प्यारे दोस्त! अगले हफ़्ते मैं उससे शादी कर रही हूं। वह मेरे प्यार में डूबा हुआ लौटा है, वह मुझे कभी नहीं भूला... आप नाराज़ नहीं होइयेगा कि मैंने आपसे उसकी चर्चा की है। मगर मैं उसके साथ आपके पास आना चाहती हूं, आप उसे भी अपना स्नेह देंगे। ठीक है न?..

"मुझे माफ़ कीजिये, अपनी नास्तेन्का को याद रखिये और प्यार कीजिये।"

मैं देर तक इस पत्र को बार-बार पढ़ता रहा। मेरी आंखों में आंसू मचलते रहे। आख़िर ख़त मेरे हाथों से गिर गया और मैंने मुंह ढांप लिया।

"लाड़ले! ओ लाड़ले!" मात्योना कह उठी।

"क्या है, बुढ़िया?"

"मैंने छत से जाले तो पूरी तरह उतार दिये। अब तुम चाहो तो शादी कर लो, मेहमान बुला लो, ऐसी बढ़िया सफ़ाई कर दी है..."

मैंने मात्योना की ओर देखा... वह तो सदा जैसी ख़ुशमिज़ाज और "ज वा न" बुढ़िया थी, मगर न जाने क्यों, मुझे अचानक ऐसा लगा कि उसकी आंखों की चमक जाती रही है, चेहरे पर झुर्रियां पड़ गयी हैं, पीठ झुक गई है, वह जराजीर्ण हो गई है... मालूम नहीं क्यों, मुझे अचानक ऐसे लगा कि मेरा कमरा भी बुढ़िया की तरह हो बुढ़ा गया है, दीवारें और फ़र्श काले हो गये हैं, सब कुछ धुंधला गया है और जाले पहले से भी कहीं ज्यादा हो गये हैं। न जाने क्यों, जब मैंने खिड़की से बाहर झांका, तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि सामनेवाला घर भी जर्जर हो गया है, धुंधला गया है, कि स्तम्भों का चूना गिरकर बिखर गया है, कि कार्निसें काली हो गयी हैं और उनमें दरारें पड़ गयी हैं और गहरे, चटक पीले रंग की दीवारें चित्तीदार हो गई हैं...

सूरज की किरण या तो अचानक बादलों में से झांककर फिर से जल-मेघों के नीचे छिप गयी और मेरी आंखों के सामने फिर से सब कुछ धुंधला गया या शायद मेरी आंखों के सामने मेरा सारा उदास और बेरंग भविष्य झलक उठा और मैंने अपने आपको ऐसे ही अनुभव किया, जैसे कि अब ठीक पन्द्रह साल बाद कर रहा हूं – बुढ़ाया हुआ, इसी कमरे में, ऐसे ही एकाकी, इसी मात्योना के साथ, जो इन सालों में ज़रा भी समझदार नहीं हुई।

मगर मैंने अपनी उस ठेस को कभी याद किया हो, सो नहीं हुआ, नास्तेन्का! तुम्हारे सुख-सौभाग्य के निर्मल और उजले आकाश पर मैंने किसी काले बादल की छाया डाली हो, कि कटुता से तुम्हें कोसकर तुम्हारे दिल को पीड़ा पहुंचायी हो, गुप्त सन्ताप से उसे घायल किया हो और अत्यधिक उल्लास के क्षण में उसे उदासी से धड़कने के लिये विवश



किया हो, कि मैंने उन कोमल फूलों में से एक को भी मसला हो, जिन्हें विवाह की वेदी पर जाते समय तुमने अपने काले घुंघराले केशों में गूंथा था... ओह, नहीं, कभी नहीं! हां, तुम्हारा आकाश सदा निर्मल रहे, हां, तुम्हारी मधुर मुस्कान सदा चमकती और खिली रहे, हां, तुम उस एक क्षण के उल्लास और सुख के लिये, जो तुमने किसी दूसरे, एकाकी और कृतज्ञ हृदय को दिया था, सदा सौभाग्यशाली रहो!

हे भगवान! उल्लास का पूरा एक क्षण! हां, मानव के सारे जीवन के लिये ही क्या यह काफी नहीं है?..

अनुवादक की ओर से

अनुवादक को लेखक और पाठक के बीच की कड़ी कहा जा सकता है। उसका काम बहुत जिम्मेदारी का होता है, क्योंकि उसे लेखक और पाठक, दोनों के प्रति न्याय करना चाहिये। मेरी दृष्टि मे लेखक के प्रति उसके न्याय का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह मूल पाठ के प्रति ईमानदार रहे, अर्थ का अनर्थ न होने दे और यथाशक्ति रचना के समूचे वातावरण को अक्षुण्ण रखते हुए विभिन्न पात्रों का अलग-अलग व्यक्तित्व उसी रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास करे, जिस रूप मे स्वयं लेखक ने उनकी कल्पना की है। कहना न होगा कि ऐसा कर पाना कुछ आसान नही होता। इसके लिये उसे लेखक की भाषा, उस भाषा के साहित्य और स्वयं उस लेखक की साहित्यिक परम्परा तथा प्रवृत्ति तथा युग-काल की अच्छी जानकारी और साथ ही स्वय उसमे कुछ सृजन-क्षमता भी होनी चाहिये। ऐसा न होने पर केवल शाब्दिक अनुवाद हो जायेगा और रचना की आत्मा की निर्दयता से हत्या कर डाली जायेगी। दूसरी ओर, पाठक के प्रति न्याय की दृष्टि से मुख्य बात यह है कि अनुवाद 'पठनीय' हो, पाठक उसे अपनी भाषा के स्वरूप, वाक्य-विन्यास और कलात्मक सौन्दर्य के अनुरूप पाये ताकि उसे अनुवाद की न्यूनतम "गन्ध" आये और वह उसे मूल-रचना के समान ही रस-विभोर होकर पढ सके। वैसे यह मान लेना उचित होगा कि अनुवादक के बहुत प्रयास करने पर भी पाठक को इस बात की चेतना तो बनी ही रहेगी कि वह अनुवाद पढ रहा है, क्योंकि पात्रों तथा स्थानो के नाम और वातावरण आदि उसके लिये पराये होंगे और इसलिये वह नही भूल सकेगा कि अपनी भाषा मे वह कोई परायी चीज पढ़ रहा है। इसीलिये कुछ अनुवादकों ने, जिनमे प्रेमचन्द जी के समान बड़े

लेखक भी शामिल हैं, मूल रचना के पात्रों तथा स्थानों के नामों आदि का "भारतीयकरण" कर दिया और इस तरह उन्हें लगभग 'अपना' ही बना दिया। किन्तु मुझे लगता है यह भी ठीक नही है। कारण कि एक तो लेखक ही गौण हो जाता है और दूसरे किसी अन्य देश, युग और वातावरण की अपनी विशिष्टतायें होती हैं, जिन्हे सुरक्षित रखने पर ही पाठक को रचनाकार के समाज, वहा की सस्कृति और लोगों के आचार-विचार का कुछ अनुमान हो सकता है। जो बात कोई रूसी या अंग्रेज पात्र कह सकता है,वह शायद भारतीय पात्र कह ही न सके और इसलिये उसके मुह से वे शब्द कहलवाना बड़ा अस्वाभाविक और अटपटा होगा। हा, अपने ही देश की विभिन्न भाषाओं के साहित्य का अनुवाद करते समय ऐसी कठिनाई लगभग सामने नही आती। वहा तो सामाजिक, सास्कृतिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लगभग समान होती है और अनुवादक तथा पाठक उससे परिचित होता है। मोटे तौर पर भाषा के परिवर्तन से ही वहां काम चल जाता है। यही कारण है कि धन्य कुमार जैन द्वारा रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचनाओं के हिन्दी अनुवाद मौलिक रचनाओं से प्रतीत होते है। किन्तु परिवेश की भिन्नता के बावजूद विदेशी भाषाओं की रचनाओं का अनुवाद करते समय भी उन्हें यथासम्भव स्वाभाविक बनाने का यत्न तो किया ही जाना चाहिये। वास्तव मे यही अनुवाद की सफलता की कसौटी हो सकती है। लेखक और पाठक के प्रति न्याय का आदर्श अनुवादक के काम को बहुत कठिन बना देता है। दोस्तोयेव्स्की जैसे महान लेखक और "रजत राते" जैसी भावुकतापूर्ण रचना के अनुवाद में तो विशेषतः ऐसी कठिनाई अनुभव होती है। सभी तरह की मुश्किलो की लम्बी चर्चा न करके मैं केवल कुछ का ही उल्लेख करूंगा। सबसे पहले तो यह कि रूसी भाषा और हिन्दी भाषा का स्वरूप बहुत भिन्न है और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से मूल पाठ में जिस चीज को वाक्य के आरम्भ मे रखा गया है, हिन्दी भाषा की प्रकृति की दृष्टि से उसे किसी दूसरे ही स्थान पर होना चाहिये। मैं एक उदाहरण देकर अपनी बात स्पष्ट करता हूं। मूल पाठ की दृष्टि से एक वाक्य का यह रूप होना चाहिये था—"मैं लौटा, उसकी तरफ़ बढ़ा और अवश्य ही मैंने 'श्रीमती जी' कहकर उसे सम्बोधित किया होता, अगर मुझे यह मालूम न होता कि कुलीनों से सम्बन्धित रूसी उपन्यासों मे हजारो बार इस सम्बोधन का उपयोग हो चुका है।" इस वाक्य में मुख्य चीज "श्रीमती" सम्बोधन है और इसे ही वाक्य के आरम्भ मे होना चाहिये। किन्तु हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुसार वाक्य का यह रूप बनता है—"अगर मुझे यह मालूम न होता कि कुलीनों से सम्बन्धित रूसी उपन्यासों में हजारों बार 'श्रीमती' सम्बोधन का उपयोग हो चुका है, तो

मैंने अवश्य ही उसे इसी तरह सम्बोधित किया होता।" वाक्य के इस दूसरे रूप मे "श्रीमती" शब्द पर उतना ज़ोर नही पड़ता जितना मूल पाठ में है, किन्तु हिन्दी-पाठक के लिये यह अधिक ग्राह्य है, हिन्दी भाषा की प्रकृति के अधिक अनुकूल है। मेरी दृष्टि मे यही सही रास्ता है, क्योंकि मूल पाठ को विशेष क्षति नही पहुंची है और हिन्दी पाठ मे रवानी और स्वाभाविकता बढ़ गयी है। पर कही-कही ऐसा करना असम्भव होता है। वहा मूल पाठ की रक्षा करना ही अधिक उपयुक्त होगा ताकि लेखक का भाव सही रूप मे पाठक तक पहुंच जाये।

"रजत राते" के अनुवाद मे एक और मुश्किल लगातार मेरे सामने रही, जो अन्य महान लेखकों की रचनाओं, विशेषकर भावुकतापूर्ण रचनाओं का अनुवाद करते समय भी सामने आये बिना नही रह सकती। इस लघु उपन्यास का नायक एक स्वप्नदर्शी है, कवि-प्रकृति का व्यक्ति है, जो ऊंची-ऊची उड़ानें भरता है, दार्शनिक है, चिन्तन की गहराइयों में डुबकियां लगाता है। वह जब अपनी बात कहता है, अपनी कल्पना के पंख फैलाता है, तो उसके एक भाव से दूसरा भाव, एक सपने से दूसरा सपना, एक उपमा से दूसरी उपमा जुडती चली जाती है। इसलिये उसके धाराप्रवाह वक्तव्य बड़े-बड़े लम्बे-लम्बे हो जाते हैं और पश्चिम की सभी समृद्ध भाषाओ के लेखको की तरह दोस्तोयेव्स्की भी कॉमा, सेमीकोलोन और कोलोन का उपयोग करते हुए नायक के भावावेग को टूटने नही देते और उसके वार्तालाप कही-कही तो पूर्ण विराम के बिना एक-दो पृष्ठों तक उमड़ते चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी-अनुवादक क्या करे? कारण कि कॉमा, सेमीकोलोन और कोलोन आदि का इतना अधिक उपयोग हिन्दी भाषा की प्रकृति के अनुरूप नही है। तो लेखक को अधिक महत्त्व दिया जाये या पाठक को? मैं इस लघु उपन्यास और अनेक अन्य रूसी महान लेखकों की रचनाओं का अनुवाद करते समय इस निष्कर्ष पर पहुंचा हू कि यदि किसी पात्र के वार्तालापों का प्रभाव या ज़ोर कम किये बिना वाक्यों को तोड़ना सम्भव हो, तो ऐसा अवश्य करना चाहिये। इससे अनुवाद अधिक मौलिक जैसा हो जायेगा। किन्तु यदि ऐसा करने से पात्र के व्यक्तित्व, उसकी मन.स्थिति और रचना के समूचे वातावरण को हानि पहुंचती प्रतीत हो, तो ऐसा प्रयास अनुचित होगा। इसीलिये आप "रजत रातें" मे ऐसे स्थल पायेंगे, जहां हिन्दी भाषा की प्रकृति की तुलना में लेखक को अधिक महत्त्व दिया गया है। कम से कम मुझे तो ऐसा करना ही अधिक उपयुक्त लगा है। इससे मूल पाठ की तो रक्षा हुई ही है, साथ ही हिन्दी-पाठक भी पात्रो की मन.स्थिति को अधिक अच्छी तरह से समझ सकेगा।

एक अन्य कठिनाई "शब्द-चयन" से सम्बन्धित थी। भाषा की सरलता और सरसता उसके सर्वमान्य गुण है। जहा आम बोल-चाल के शब्दों, सटीक कहावतो और उपयुक्त मुहावरो से काम चलाना सम्भव हुआ, वहा उन्ही का उपयोग किया गया है और शब्दानुवाद से बचने के लिये भावो को अधिक महत्त्व दिया गया है। पर कही-कही लेखक ने पात्रों, विशेषतः नायक की मानसिक उथल-पुथल को व्यक्त करने के लिये कुछ ऐसे शब्दों का उपयोग किया गया है जिनके हिन्दी पर्यायवाची शब्द आम बोलचाल की भाषा में नही मिलते। वहा शब्दों के कुछ कठिन होने पर भी उनकी उपयुक्तता की ओर अधिक ध्यान दिया गया है।

दोस्तोयेव्स्की विश्व-साहित्य के एक अनमोल रत्न हैं और भारतीय पाठक अंग्रेज़ी-अनुवादो की बदौलत उनकी "दरिद्र नारायण", "अपराध और दण्ड" तथा "कारामाजोव बन्धु" आदि प्रसिद्ध रचनाओं से बहुत अर्से से परिचित हैं। पिछले कुछ सालों मे मुख्यतः पश्चिम के अंग्रेजी अनुवादों से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में "अनुवाद-दर-अनुवाद" भी हुए हैं। मैं अपने अनुभव से जानता हू कि अंग्रेज़ी अनुवाद से अन्य भाषाओं मे अनुवाद करने से मूल-रचना का ढाचा ही बच रहता है, आत्मा तो लगभग निकल जाती है। दुर्भाग्य से अगर अनुवादक-महोदय की अंग्रेजी भाषा की जानकारी कच्ची हो और किसी अच्छे सम्पादक द्वारा मूल-पाठ से तुलना किये बिना ही अनुवाद छाप दिया जाये, तब तो रचना की ऐसी मिट्टी पलीद होती है, अर्थ का ऐसा अनर्थ होता है कि बयान से बाहर। ऐसे कुछ अनुवाद मेरी नजर से गुज़रे हैं। यह साहित्यिक अपराध और अराजकता है। मास्को से प्रकाशित अनुवादों मे चाहे और कोई गुण हो या न हो, कम से कम अर्थ का अनर्थ तो नही होता। कारण कि या तो अनुवाद सीधे रूसी से होते हैं या हिन्दी की अच्छी जानकारी रखनेवाले रूसी सम्पादक मूल पाठ से उनकी तुलना करके अर्थ-सम्बन्धी भूलों की ओर संकेत कर देते हैं। दोस्तोयेव्स्की जैसे महान लेखक की रचनाओं का अनुवाद करते समय तो ऐसी सतर्कता बहुत ही ज़रूरी है। भारतीय पाठकों से मैं यह भी अनुरोध करूगा कि वे अंग्रेज़ी के पश्चिमी अनुवादों की श्रेष्ठता तथा हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में प्रकाशित अनुवादो की हीनता का पूर्वाग्रह छोड़कर अपनी भाषाओं मे ही उनका रस ले और अपने अनुवादकों-प्रकाशकों से अधिक अच्छे स्तर की माग करें।

रचना-शिल्प की दृष्टि से आधुनिक उपन्यास दोस्तोयेव्स्की के जमाने से बहुत आगे निकल चुका है। किन्तु पिछले सौ-डेढ़ सौ वर्ष में रचना-शिल्प के विकास को अनुभव करने की दृष्टि से "रजत राते" बहुत दिलचस्प है।

"रजत राते" दोस्तोयेव्स्की की एक प्रारम्भिक रचना है, पर महान लेखक

अपने सृजनकाल के आरम्भ में ही मानव मन मे कितनी अच्छी तरह से झाक सकता था, उसके आन्तरिक संघर्ष को कितनी अच्छी तरह समझ सकता था, यह चना उसका सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। जीवन की बहुत अच्छी पकड रखनेवाला और अत्यधिक अनुभूतिशील लेखक ही शाश्वत सत्य बननेवाले ऐसे शब्द लिख सकता है –

"...जब हम खुद दुखी होते है, तो दूसरे के दुःख की हमे कहीं अधिक अनुभूति होती है; तब भावना मरती नही, संकेन्द्रित हो जाती है..."

या फिर इस मनोवैज्ञानिक सत्य की ओर ध्यान दीजिये –

"...हा, खुशी और सुख-सौभाग्य व्यक्ति को कितना अद्भुत बना देते है! प्यार दिल मे छलका पड़ता है! ऐसी इच्छा होती है कि हम अपने दिल का सारा प्यार किसी दूसरे दिल में उंडेल दें, जी चाहता है कि हर चीज खुश हो, हर चीज हसे-मुस्कराये। कैसे दूसरो को अपनी छूत देती है यह खुशी!"

या फिर जब वास्तविक जीवन का स्पर्श होने पर स्वप्न-ससार खण्ड-खण्ड होता है, सपनों का मोह टूटता है, तो महान लेखक ने उसका कितना सुन्दर वर्णन किया है–

"इसी समय जिन्दगी के चक्कर मे लोगो की भीड़ दौड़-धूप करती दिखाई देती है, उसका शोर सुनाई देता है, यह नजर आता है कि कैसे लोग वास्तविक जीवन बिताते हैं, यह देखने को मिलता है कि उनकी जिन्दगी भरी-पूरी है, कि उनकी जिन्दगी सपने या छाया की तरह झलक दिखाकर गायब नही हो जायेगी, कि उनका जीवन नित नया रूप धारण करता है, वह सदा जवान रहता है और उनके जीवन का हर क्षण दूसरे से भिन्न होता है। दूसरी ओर भीरु कल्पना कितनी नीरस और ऊब की चरम-सीमा तक एकरूपी है... मैंने जो खोया है, वह सब कुछ भी तो नही था, पागलपन था, एकदम शून्य था, वे तो केवल सपने थे!"

यदि यह सही है कि हर महान लेखक अपनी रचना के माध्यम से कोई सन्देश देता है, तो दोस्तोयेव्स्की की इस कृति का यही सन्देश है।

टिप्पणियां

"रजत रातें"–यह लघु उपन्यास पहली बार "ओतेचेस्त्वेन्निये जपीसकी" पत्रिका में छपा और कवि अ० न० प्लेश्चेयेव को समर्पित किया गया था।

पृ० १५ दिव्य साम्राज्य... चीनियों ने अपने साम्राज्य को ऐसी संज्ञा दी थी। वहा के सम्राट की वंशावली का रंग पीला था।

पृ० ३६ होफ़मान (१७७६–१८२२) प्रमुखतम जर्मन रोमानी कवि। उन्होंने अपनी रचनाओं मे स्वप्नदर्शी कलाकार के रूप प्रस्तुत किये हैं। यह स्वप्नदर्शी तत्कालीन जीवन-पद्धति के मुकाबले मे कोई विकल्प प्रस्तुत करने मे असमर्थ होने पर कल्पनाओं की दुनिया मे खो जाता है।

सेन्ट बार्थोलोमिओ की रात – पेरिस में कैथोलिकों द्वारा ह्यूगेनों (धार्मिक-राजनीतिक पार्टियां) का कत्ले-आम, जो १७७२ मे सेन्ट बार्थोलोमिओ पर्व की रात को हुआ। फ़्रांसीसी लेखक मेरीमे ने इन्ही घटनाओं को अपने उपन्यास "चार्ल्स ६ वें के समय का वृत्त" का विषय बनाया।

डिआना वर्नोन – अंग्रेज लेखक वाल्टर स्कॉट के उपन्यास "Rob Roy" की नायिका। क्लारा मोब्रे – उन्ही के उपन्यास "St. Ronan's Well" की नायिका। एफी डीन्स – उन्ही के उपन्यास "The Heart of Mid-Lothian" की एक पात्र।

हुस, यान – (१३६६–१४१५) जर्मनों और कैथोलिकों के जोर-जुल्म के खिलाफ बोहीमिया में चेक जन-आन्दोलन के प्रेरक। प्रीनेट परिषद ने जहां हुस को धोखे से बुलाया गया था, उन्हें जला डालने का दण्ड दिया।

रोबेर्टो में मृतों का पुनर्जन्म – फ़्रासीसी स्वरकार मेयरबेर (१७६१–१८६४) के ऑपेरा "रावर्ट-शैतान" में अभिप्राय है।

मीन्ना और ब्रेंडा – "मीन्ना (गेटे की शैली पर)" – व० अ० जुकोव्स्की (१७८३–१८५२) की कविता, "ब्रेंडा" – पुश्किन युग के एक कवि इ० कोज़्लोव का गाथाकाव्य।

बेरेज़ीना की लड़ाई – १८१२ के नवम्बर में बेरेज़ीना नदी के तट पर हुई लड़ाई मे मास्को से हटते हुए नेपोलियन प्रथम की बची-खुची फौज को पूरी तरह कुचल दिया गया था।

दांतोन – (१७५६–१७९४) १७८६ की फ़्रांसीसी पूंजीवादी क्रान्ति के एक नेता।

कल्योपेत्रा और उसके प्रेमी – पुश्किन की "मिस्र की रातें" (१८३५) रचना से।

"कोलोमना में छोटा-सा घर" – पुश्किन द्वारा १८३० में रचा गया पद्य लघु उपन्यास।

पृ० ६० रोज़ीना – इतालवी स्वरकार द० रोस्सीनी (१७९२–१८६८) के ऑपेरा "सेविले का नाई" की एक पात्र।